दादा भगवान कथित

दान

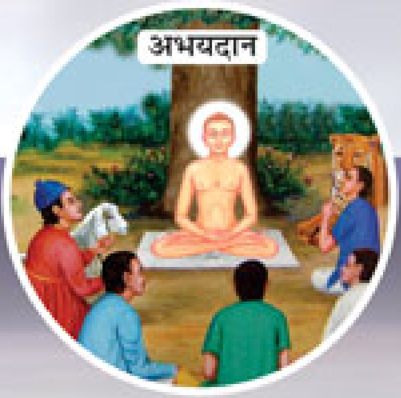

दादा भगवान कथित

दान

मूळ गुजराती संकलन : डॉ. नीरू बहन अमीन

अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : अजीत सी. पटेल
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने,
नवरंगपुरा, अहमदाबाद - 380009,
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2100

© Dada Bhagwan Foundation,
5, Mamta Park Society, B\h. Navgujarat College,
Usmanpura, Ahmedabad -380014, Gujarat, India.
Email : info@dadabhagwan.org
Tel : + 91 79 3500 2100

All Rights Reserved. No part of this publication may be shared, copied, translated or reproduced in any form (including electronic storage or audio recording) without written permission from the holder of the copyright. This publication is licensed for your personal use only.

प्रथम संस्करण	:	3,000 प्रतियाँ	फरवरी, 2010
रीप्रिन्ट	:	15,000 प्रतियाँ	अप्रैल, 2010 से अक्तूबर, 2014
नयी रीप्रिन्ट	:	5,000 प्रतियाँ	मार्च, 2017

भाव मूल्य : 'परम विनय' और 'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 15 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
B-99, इलेक्ट्रॉनिक्स GIDC,
क-6 रोड, सेक्टर-25,
गांधीनगर-382044.
Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2142

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं

नमो सिद्धाणं

नमो आयरियाणं

नमो उवज्झायाणं

नमो लोए सव्वसाहूणं

एसो पंच नमुक्कारो

सव्व पावप्पणासणो

मंगलाणं च सव्वेसिं

पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥

ॐ नम: शिवाय ॥ ३ ॥

जय सच्चिदानंद

‘दादा भगवान’ कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन, प्लेटफार्म नं. 3 की बेंच पर बैठे श्री अंबालाल मूलजीभाई पटेल रूपी देहमंदिर में कुदरती रूप से, अक्रम रूप में, कई जन्मों से व्यक्त होने के लिए आतुर ‘दादा भगवान’ पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्‌भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। ‘मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?’ इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए। इस तरह कुदरत ने विश्व के सम्मुख एक अद्वितीय पूर्ण दर्शन प्रस्तुत किया और उसके माध्यम बने श्री अंबालाल मूलजी भाई पटेल, गुजरात के चरोतर क्षेत्र के भादरण गाँव के पाटीदार, कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय करनेवाले, फिर भी पूर्णतया वीतराग पुरुष!

‘व्यापार में धर्म होना चाहिए, धर्म में व्यापार नहीं’, इस सिद्धांत से उन्होंने पूरा जीवन बिताया। जीवन में कभी भी उन्होंने किसीके पास से पैसा नहीं लिया बल्कि अपनी कमाई से भक्तों को यात्रा करवाते थे।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य मुमुक्षुजनों को भी वे आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्‌भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे अक्रम मार्ग कहा। अक्रम, अर्थात् बिना क्रम के, और क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना। अक्रम अर्थात् लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट।

वे स्वयं प्रत्येक को ‘दादा भगवान कौन?’ का रहस्य बताते हुए कहते थे कि “यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, वे तो ‘ए.एम.पटेल’ हैं। हम ज्ञानीपुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे ‘दादा भगवान’ हैं। दादा भगवान तो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और ‘यहाँ’ हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।”

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

❖❖❖❖❖

संपादकीय

पुण्य करने के अनेक रास्तों का शास्त्रों ने और धर्मगुरुओं ने वर्णन किया है। उनमें से एक है, दान। दान यानी दूसरे को अपना कुछ देकर उसे सुख देना वह। दान देने की प्रथा तो मनुष्य के जीवन में बचपन से अपनाने में आई है। और छोटा बच्चा हो, उसे भी मंदिर में ले जाते हैं, तो बाहर गरीब लोगों को पैसे दिलवाते हैं, खाने का दिलवाते हैं, मंदिर में दान की पेटी में पैसे डलवाते हैं। इस प्रकार बचपन से दान के संस्कार मिलते ही हैं। दान देते हुए अंदर की अजागृति हो तो देकर भी खोट खाते हैं, उसका सूक्ष्म निरूपण परम पूज्य दादाश्री ने किया है। दान देते हुए कौन सी जागृति रखनी चाहिए? सब से ऊँचा दान कौन सा? दान किस-किस तरह से हो सकता है? उसके पीछे भावनाएँ कैसी होनी चाहिए? दान किसे देना चाहिए? वगैरह, वगैरह। अनेक दान से संबंधित बातें जो दादाश्री की ज्ञानवाणी द्वारा बही है वह प्रस्तुत पुस्तिका में संकलित करके प्रकाशित की गई हैं। जो सुज्ञ पाठक को दान देने में उत्तम मार्गदर्शिका बनेगी।

- डॉ. नीरू बहन अमीन के

जय सच्चिदानंद

दान

दान किसलिए?

प्रश्नकर्ता : यह दान किसलिए किया जाता है?

दादाश्री : ऐसा है, वह खुद दान देकर कुछ लेना चाहता है। सुख देकर सुख पाना चाहता है। मोक्ष के लिए दान नहीं देता। सुख लोगों को दो तो आपको सुख मिलेगा। जो आप देते हो, वह पाओगे। इसलिए, यह तो नियम है, वह तो देने से हमें मिलता है, प्राप्ति होती है। ले लेने से फिर चला जाता है।

प्रश्नकर्ता : उपवास करना अच्छा है या कुछ दान करना अच्छा है?

दादाश्री : दान करना यानी, खेत में बोना। खेत में बोकर आना, फिर उसका फल मिलेगा। और उपवास करने से भीतर जागृति बढ़ेगी। लेकिन शक्ति अनुसार उपवास करने को भगवान ने कहा है।

दान का मतलब ही सुख देना

दान यानी दूसरे किसी भी जीव को, मनुष्य हो या दूसरे प्राणी हों, उन्हें सुख देना, वही है दान! और सब को सुख दिया इसलिए उसका 'रिएक्शन' हमें सुख ही मिलता है। सुख दो तो तुरंत ही सुख आपको घर बैठे आएगा!

जब आप दान देते हो, तब आपको अंदर सुख महसूस होता

है। खुद के घर के रुपए देते हो, फिर भी सुख होता है, क्योंकि अच्छा काम किया। अच्छा काम करें तो सुख होता है और खराब काम करें, उस घड़ी दु:ख होता है। उस पर से हमें पता चलता है कि कौन सा अच्छा और कौन सा बुरा।

आनंद प्राप्ति के उपाय

प्रश्नकर्ता : मानसिक शांति प्राप्त करने के लिए मनुष्य किसी गरीब, किसी अशक्त की सेवा करे या भगवान की भजना करे या फिर किसी को दान दे? क्या करना चाहिए?

दादाश्री : मानसिक शांति चाहिए तो अपनी चीज़ दूसरे को खिला देनी चाहिए। कल आइस्क्रीम का पीपा भरकर लाना और इन सब को खिलाना। उस घड़ी तुझे कितना सारा आनंद होता है, वह तू मुझे कहना। उन लोगों को आइस्क्रीम खानी नहीं है। तू तेरे शांति का प्रयोग करके देख। ये कोई सर्दी में फालतू नहीं है, आइस्क्रीम खाने को। इस प्रकार तू जहाँ हो वहाँ कोई जानवर हो, ये बंदर होते हैं, उन्हें चने डालें तो वे उछलकूद करते हैं। वहाँ तेरे आनंद की सीमा नहीं रहेगी। वे खाते जाएँगे और तेरे आनंद की सीमा नहीं रहेगी। इन कबूतरों को तू दाना डाले उससे पहले कबूतर ऐसे उछलकूद करने लगते हैं। और तूने डाला, तेरी खुद की चीज़ दूसरों को दी कि भीतर आनंद शुरू हो जाएगा। अभी कोई मनुष्य रास्ते में गिर गया और उसका पैर टूट गया और खून निकलता हो, वहाँ तू अपनी धोती फाड़कर ऐसे बाँधे, उस समय तुझे आनंद होगा। भले ही सौ रुपए की धोती हो, उसे फाड़कर तू बांधे, लेकिन उस घड़ी तुझे आनंद खूब होगा।

दान, कहाँ दिया जाए?

प्रश्नकर्ता : कुछ धर्मों में ऐसा कहा है कि जो कुछ कमाया हो, उसमें से कुछ प्रतिशत दान करो, पाँच-दस प्रतिशत दान करो, तो वह कैसा है?

दादाश्री : धर्म में दान करने में हर्ज नहीं है, लेकिन जहाँ पर धर्म की संस्था हो और लक्ष्मी का धर्म में सदुपयोग होता हो तो वहाँ दो। दुरुपयोग होता हो वहाँ मत दो, दूसरी जगह पर देना।

पैसा सदुपयोग में जाए, ऐसा खास ध्यान रखो। नहीं तो आपके पास पैसे अधिक होंगे, तो वे आपको अधोगति में ले जाएँगे, इसलिए उन पैसों का कहीं भी सदुपयोग कर डालो। लेकिन धर्माचार्यों को पैसे लेने नहीं चाहिए।

मोड़ो लक्ष्मी, धर्म की ओर

पैसे संभालना, वह तो बहुत मुश्किल है! इससे तो कम कमाएँ वह अच्छा। यहाँ बारह महीने में दस हज़ार कमाए और एक हज़ार भगवान के यहाँ रख दें, तो उसे कोई *उपाधि* (बाहर से आने वाला दुःख) नहीं है। कोई लाखों दे और यह हज़ार दे, दोनों एक जैसा। लेकिन हज़ार भी, कुछ तो देना चाहिए न! मेरा क्या कहना है कि कुछ न दो, ऐसा मत रखना, कम में से भी कुछ देना और अधिक हो और वह धर्म की ओर मुड़ गया, फिर अपनी ज़िम्मेदारी नहीं, नहीं तो जोखिम है। बहुत पीड़ा वह तो। पैसे संभालने, यानी बहुत मुश्किल। गायों-भैंसों को संभालना अच्छा, खूँटे पर बाँध दीं तो सुबह तक चली तो नहीं जातीं लेकिन पैसे संभालना बहुत मुश्किल है। मुश्किल, *उपाधि* सारी...

क्यों नहीं टिकती लक्ष्मी?

प्रश्नकर्ता : मैं दस हज़ार रुपए महीना कमाता हूँ, लेकिन मेरे पास लक्ष्मी जी टिकती क्यों नहीं?

दादाश्री : सन् 1942 के बाद की लक्ष्मी टिकती नहीं है। यह लक्ष्मी है, वह पाप की लक्ष्मी है, इसलिए टिकती नहीं है। अब से दो-पाँच साल के बाद की लक्ष्मी टिकेगी। हम ज्ञानी हैं, फिर भी लक्ष्मी आती है, लेकिन टिकती नहीं है। यह तो इन्कम टैक्स भर सकें, उतनी लक्ष्मी आए तो हो गया।

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी टिकती नहीं है, तो क्या करें?

दादाश्री : लक्ष्मी तो टिके ऐसी है ही नहीं, लेकिन उसका रास्ता बदल देना चाहिए। वह जिस रास्ते जाती है, उसका प्रवाह बदल देना और धर्म के रास्ते पर मोड़ देना। वह जितनी सुमार्ग पर गई, उतनी खरी। भगवान आएँ, फिर लक्ष्मी टिकती है, उसके बिना लक्ष्मी टिके कैसे? भगवान हों, वहाँ क्लेश नहीं होता और अकेली लक्ष्मी जी हों तो क्लेश और झगड़े होते हैं। लोग लक्ष्मी ढेर सारी कमाते हैं, लेकिन वह बर्बाद होती है। किसी पुण्यशाली के हाथों लक्ष्मी अच्छे रास्ते खर्च होती है। लक्ष्मी अच्छे रास्ते खर्च हो, वह बहुत भारी पुण्य कहलाता है।

सन् 1942 के बाद की लक्ष्मी में कोई सार ही नहीं है। अभी लक्ष्मी यथार्थ जगह खर्च नहीं होती है। यथार्थ जगह खर्च हो, तो बहुत अच्छा कहलाए।

सात पुश्तों तक टिके लक्ष्मी...

प्रश्नकर्ता : जैसे इन्डिया में कस्तूर भाई लाल भाई की पीढ़ी है, तो वह दो, तीन, चार पीढ़ी तक पैसे चलते रहते हैं, उनके बच्चों के बच्चों तक। जबकि यहाँ अमरीका में कैसा है कि पीढ़ी होती है, लेकिन बहुत हुआ तो छः-आठ वर्ष में सब खत्म हो जाता है। या तो पैसे हों तो चले जाते हैं और नहीं हों तो पैसे आ भी जाते हैं। तो उसका कारण क्या होगा?

दादाश्री : ऐसा है न, वहाँ का जो पुण्य है न, इन्डिया का पुण्य, वह पुण्य इतना चिकना होता है कि धोते रहें, फिर भी जाता नहीं और पाप भी ऐसे चिकने होते हैं कि धोते रहें, फिर भी जाते नहीं। इसलिए, वैष्णव हो या जैन हो, लेकिन उसने पुण्य इतना मज़बूत बाँधा हुआ होता है कि धोते रहें फिर भी जाता नहीं। जैसे कि पेटलाद के दातार सेठ, रमणलाल सेठ की सात-सात पीढ़ियों तक सम्पन्नता रही। फावड़ों से खोद-खोदकर धन दिया करते थे लोगों को, फिर भी कभी कमी

नहीं आई। उन्होंने पुण्य ज़बरदस्त बाँधा था, *सचोट*। और पाप भी ऐसे *सचोट* बाँधते थे, सात-सात पीढ़ी तक गरीबी नहीं जाती थी। अत्यंत दु:ख भुगतते हैं, अर्थात् एक्सेस भी होता है और मीडियम भी रहता है।

यहाँ अमरीका में तो उफनता भी है और फिर बैठ भी जाता है और फिर उफनता भी है। बैठ जाने के बाद, फिर से वापस उफनता है। यहाँ देर नहीं लगती और वहाँ इन्डिया में तो बैठ जाने के बाद उफान आने में बहुत टाइम लगता है। इसलिए वहाँ तो सात-सात पीढ़ी तक चलता था। अब सब पुण्य घट गया है। क्योंकि क्या होता है? कस्तूर भाई के यहाँ जन्म कौन लेगा? तब कहें, ऐसे पुण्यवान जो उनके जैसे ही हों, वे ही वहाँ जन्म लेंगे। फिर उसके यहाँ कौन जन्मे? वैसा ही पुण्यशाली फिर वहाँ जन्मता है। वह कस्तूर भाई का पुण्य काम नहीं करता। वह फिर दूसरा वैसा आया हो तो फिर उसका पुण्य। इसलिए कहलाती है कस्तूर भाई की पीढ़ी और आज तो ऐसे पुण्यशाली हैं ही कहाँ? अब अभी इन पिछले पच्चीस वर्षों में तो कोई खास ऐसा नहीं है।

नहीं तो गटर में बह जाएगा...

पहले तो लक्ष्मी पाँच पीढ़ी तो टिकती, तीन पीढ़ी तो टिकती थी। यह तो लक्ष्मी एक पीढ़ी भी टिकती नहीं। इस काल की लक्ष्मी कैसी है? एक पीढ़ी भी टिकती नहीं। उसकी उपस्थिति में ही आए और उसी की उपस्थिति में चली जाए, ऐसी यह लक्ष्मी है। यह तो पापानुबंधी पुण्य की लक्ष्मी है। थोड़ी-बहुत उसमें पुण्यानुबंधी पुण्य की लक्ष्मी हो, तो आपको यहाँ आने की प्रेरणा देती है। यहाँ मिलवा देती है और आपसे यहाँ खर्च करवाती है। अच्छे मार्ग से लक्ष्मी जाए, नहीं तो सब धूल में मिल जाने वाला है। सब गटर में चला जाएगा... ये बच्चे हमारी ही लक्ष्मी भोगते हैं न और जब हम बच्चों से कहें कि तुमने हमारी लक्ष्मी भोगी, तब वे कहेंगे, 'आपकी कैसे? हम हमारी ही भोग रहे हैं', ऐसा कहेंगे। इसलिए, गटर में ही गया न सब!

अतिरिक्त बहाओ, धर्म के लिए...

ये तो लोकसंज्ञा से दूसरों का देखकर सीखते हैं। लेकिन यदि ज्ञानी से पूछें न, तो वे कहें कि 'ना, यह क्यों ऐसे इस गड्ढे में गिरते हैं?'... इस दुःख के गड्ढे में से निकला, तो वापस पैसौं के इस गड्ढे में गिरा?... ज़्यादा हों तो डाल दे धर्म में, यहाँ से। वही तेरे हिसाब में जमा होता है। और यह बैंक का जमा नहीं होता। अड़चन नहीं आएगी तुझे। जो धर्म के लिए देता है, उसे अड़चन नहीं आती।

उसका प्रवाह बदलो

खरे समय पर तो सिर्फ धर्म ही आपको मदद करके खड़ा रहता है, इसलिए धर्म के प्रवाह में लक्ष्मी जी को जाने देना। सिर्फ एक सुषमकाल में (जब तीर्थंकर भगवान हाज़िर हों) लक्ष्मी मोह करने योग्य थी। वे लक्ष्मी जी तो आई नहीं! अभी इन सेठों को हार्ट फेल और ब्लड प्रेशर कौन करवाता है? इस काल की लक्ष्मी ही करवाती है।

पैसों का स्वभाव कैसा है? चंचल है। इसलिए आते हैं और एक दिन वापस चले जाते हैं। इसलिए पैसे लोगों के हित के लिए खर्च करने चाहिए। जब आपका खराब उदय आया हो, तब लोगों को दिया हुआ होगा, वही आपको हेल्प करेगा। इसलिए पहले से ही समझना चाहिए। पैसों का सद्व्यय तो करना ही चाहिए न?

चारित्र्य से समझदार हुआ कि सारा संसार जीत गया। फिर भले ही सब, जो खाना हो, वह खाए-पीए और अधिक हो, तो खिला दे। दूसरा करने का है क्या?... क्या साथ ले जा पाते हैं?... जो धन औरों के लिए खर्च किया, उतना ही धन अपना। उतनी आने वाले भव की जमा राशि। इसलिए किसी को आने वाले जन्म की जमा पूँजी यदि इकट्ठी करनी हो तो धन औरों के लिए खर्च करना। फिर पराया जीव, उसमें कोई भी जीव, फिर वह कौआ हो और यदि उसने इतना सा भी

चखा होगा, तो भी आपकी जमा पूँजी। लेकिन आप और आपके बच्चों ने खाया, वह सब आपकी जमा पूँजी नहीं है। वह सब गटर में गया। फिर भी गटर में जाता बंद कर नहीं सकते, क्योंकि वह तो अनिवार्य है। इसलिए कोई छुटकारा है? लेकिन साथ-साथ यह भी समझना चाहिए कि औरों के लिए नहीं खर्च हुआ, वह सब गटर में ही जाता है।

मनुष्यों को न खिलाओ और आखिर कौए को खिलाओ, चिड़ियों को खिलाओ, सब को खिलाओ तो वह परायों के लिए खर्च किया हुआ माना जाएगा। मनुष्यों की थाली की कीमत तो बहुत बढ़ गई है न? चिड़ियों की थाली की कीमत खास नहीं है न? तब जमा भी उतना कम ही होगा न?

मन बिगड़े हैं, इसलिए...

प्रश्नकर्ता : मैं कुछ समय तक अपनी कमाई में से तीस प्रतिशत धार्मिक काम में देता था, लेकिन वह सब रुक गया है। जो-जो देता था, वह अब दे नहीं सकता।

दादाश्री : वह तो आपको करना है, तो दो वर्ष बाद भी आएगा ही। वहाँ कोई कमी नहीं है, वहाँ तो ढेर सारा है। आपके मन बिगड़े हुए हों, तो क्या हो?

आए तो दें या दें तो आए?

एक आदमी के यहाँ बंगले में बैठे थे और बवंडर आया तो दरवाज़े खड़खड़ाने लगे। उसने मुझसे कहा, 'यह बवंडर आया है। दरवाज़े सब बंद कर दूँ?' मैंने कहा, 'सब दरवाज़े बंद मत करना, अंदर प्रवेश करने का एक दरवाज़ा खुला रख और बाहर निकलने के दरवाज़े बंद कर दे, फिर अंदर कितनी हवा आएगी? जब भरी हुई खाली होगी, तभी हवा अंदर आएगी न? नहीं तो चाहे कैसा भी बवंडर हो, अंदर नहीं आएगा'। फिर उसे अनुभव करवाया। तब मुझ से कहा, 'अब, अंदर नहीं आ रहा है'।

तो इस बवंडर का ऐसा है। लक्ष्मी को यदि रोकोगे तो नहीं आएगी। होगी उतनी भरी की भरी रहेगी। और इस ओर से जाने दोगे तो दूसरी ओर से आया करेगी। यदि रोककर रखोगे तो उतनी की उतनी रहेगी। लक्ष्मी का भी काम ऐसा ही है। अब किस रास्ते जाने देना, वह आपकी मर्ज़ी पर आधारित है कि बीवी-बच्चों के मौज-मज़े के लिए जाने देना या कीर्ति के लिए जाने देना या ज्ञानदान के लिए जाने देना या अन्नदान के लिए जाने देना? किसके लिए जाने देना वह आप पर है, लेकिन जाने दोगे तो दूसरी आएगी। जाने नहीं दे, उसका क्या हो? जाने दें तो दूसरी नहीं आती? हाँ, आती है।

बदले हुए प्रवाह की दिशाएँ

कितने प्रकार के दान हैं, यह जानते हैं आप? चार प्रकार दान के हैं। देखो! एक आहारदान, दूसरा औषधदान, तीसरा ज्ञानदान और चौथा अभयदान।

पहला आहारदान

पहले प्रकार का जो दान है वह अन्नदान। इस दान के लिए तो ऐसा कहा है कि भाई यदि कोई व्यक्ति हमारे घर आए और कहे, 'मुझे कुछ दो, मैं भूखा हूँ'। तब अगर हम कहें, 'बैठ जा, यहाँ खाने। मैं तुझे परोसता हूँ', तो वह आहारदान है। जबकि अक्ल वाले क्या कहते हैं? 'इस तगड़े को अभी खिलाओगे, लेकिन फिर शाम को क्या खिलाओगे?' तब भगवान कहते हैं, 'तू ऐसी अक्ल मत लगाना। यदि इस व्यक्ति ने खिलाया तो वह आज के दिन तो जीएगा। कल फिर से उसे जीने के लिए कोई आ मिलेगा। फिर कल के बारे में हमें नहीं सोचना है। आपको और कोई झंझट नहीं करनी कि कल वह क्या करेगा? वह तो, कल उसे मिल जाएगा वापस। आपको इसमें चिंता नहीं करनी है कि हमेशा दे पाएँगे या नहीं। आपके यहाँ आया इसलिए

आप उसे दो, जो कुछ दे सको, वह। आज तो जीवित रहा, बस! फिर कल उसका और कोई उदय होगा, आपको फ़िक्र करने की ज़रूरत नहीं।

प्रश्नकर्ता : अन्नदान श्रेष्ठ माना जाता है?

दादाश्री : अन्नदान अच्छा माना जाता है, लेकिन अन्नदान कितना दे सकते हैं? कुछ सदा के लिए देते नहीं हैं न लोग। एक पहर खिला सके तो बहुत हो गया। दूसरा पहर फिर मिल आएगा। लेकिन आज का दिन, एक पहर भी तू जीवित रहा न! अब इसमें भी लोग बचा-खुचा ही देते हैं या नया बनाकर देते हैं?

प्रश्नकर्ता : बचा हुआ हो, वही देते हैं, अपनी जान छुड़ाते हैं। बच गया तो अब क्या करे?

दादाश्री : फिर भी उसका सदुपयोग तो करते हैं, मेरे भाई! लेकिन यदि नया बनाकर देंगे, तब मैं कहूँगा कि 'करेक्ट' है। वीतरागों के यहाँ कोई कानून होगा या गप्प चलेगी?

प्रश्नकर्ता : नहीं, नहीं, गप्प होती होगी?

दादाश्री : वीतरागों के यहाँ नहीं चलता, दूसरी सब जगह चलता है।

औषधदान

दूसरा है औषधदान, वह आहारदान से उत्तम माना जाता है। औषधदान से क्या होता है? साधारण स्थिति का इंसान बीमार हो जाता है और अस्पताल में जाता है। और वहाँ वह कहे कि 'अरे! डॉक्टर ने कहा है, लेकिन दवाई के पचास रुपए भी मेरे पास नहीं हैं तो दवाई कैसे लाऊँ?' तब कहना कि 'ये पचास रुपए दवाई के और ये दस रुपए।' या फिर हमें कहीं से औषध लाकर उसे मुफ्त में दे देनी चाहिए। हमें पैसे खर्च करके औषध लाकर फ्री ऑफ कॉस्ट (मुफ्त) दे देनी चाहिए। तो यदि वह औषध लेगा तो बेचारा चार-छः साल

जीएगा। अन्नदान की तुलना में औषधदान से अधिक फायदा है। समझ में आया आपको? किसमें फायदा अधिक? अन्नदान अच्छा या औषधदान?

प्रश्नकर्ता : औषधदान।

दादाश्री : औषधदान को आहारदान से अधिक कीमती माना है। क्योंकि वह दो महीने भी जीवित रखता है। मनुष्य को अधिक समय जीवित रखता है। वेदना में से थोड़ी-बहुत मुक्ति दिलवाता है।

बाकी अन्नदान और औषधदान तो हमारे यहाँ सहज ही औरतें और बच्चे सभी करते रहते हैं। वह कोई बहुत कीमती दान नहीं है, लेकिन करना चाहिए। यदि हमें कोई ऐसा मिल जाए, हमारे यहाँ कोई दु:खी इंसान आए तो जो भी तैयार हो वह उसे तुरंत दे देना।

बड़ा है ज्ञानदान

फिर उससे आगे ज्ञानदान कहा है। ज्ञानदान में पुस्तकें छपवानी, लोगों को समझाकर सच्चे रास्ते पर ले जाएँ और लोगों का कल्याण हो, ऐसी पुस्तकें छपवानी आदि वह, ज्ञानदान। ज्ञानदान दें, तो अच्छी गतियों में, ऊँची गतियों में जाता है या फिर मोक्ष में भी जा सकता है।

इसलिए भगवान ने ज्ञानदान को मुख्य चीज़ कहा है और जहाँ पैसों की ज़रूरत नहीं है, वहाँ अभयदान की बात कही है। जहाँ पैसों का लेन-देन है, वहाँ पर ज्ञानदान का कहा है और साधारण स्थिति, नरम स्थिति के लोगों को औषधदान और आहारदान देने का कहा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि पैसे बचे हों तो वह दान तो करेगा न?

दादाश्री : दान तो उत्तम है। जहाँ दु:ख हो वहाँ दु:खों को कम करो और दूसरा सन्मार्ग पर खर्च करना। लोग सन्मार्ग पर जाएँ ऐसा ज्ञानदान करो। इस दुनिया में ऊँचा ज्ञानदान है। आप एक वाक्य जानो

तो आपको कितना अधिक लाभ होता है। अब वह पुस्तक लोगों के हाथ में जाए तो कितना अधिक लाभ हो!

प्रश्नकर्ता : अब ठीक से समझ में आया...

दादाश्री : हाँ, इसलिए जिसके पास पैसे अधिक हों, उसे ज्ञानदान मुख्यत: करना चाहिए।

अब वह ज्ञानदान कैसा होना चाहिए? लोगों को हितकारी हो ऐसा ज्ञान होना चाहिए। हाँ, डकैतों की बातें सुनने के लिए नहीं। वह तो गिराता है। वह पढ़ें तो आनंद तो होता है उसमें, लेकिन नीचे अधोगति में जाता है।

सर्वोच्च है अभयदान

चौथा है अभयदान। अभयदान तो, किसी भी जीव को त्रास न हो ऐसा वर्तन रखना, वह अभयदान है।

प्रश्नकर्ता : अभयदान के बारे में ज़रा अधिक समझाइए।

दादाश्री : अभयदान यानी हमसे किसी जीव को किंचित्मात्र दुःख न हो। उसका उदाहरण देता हूँ। मैं सिनेमा देखने जाता था, कम उम्र में, बाईस-पच्चीस साल की उम्र में। तो वापस आऊँ तो रात के बारह-साढ़े बारह बजे होते थे। पैदल चलते हुए आता था तो जूते खड़कते थे। हम वो लोहे की नाल लगवाते थे, इसलिए खटखट होती और रात में आवाज़ बहुत अच्छी आती। रात को कुत्ते बेचारे सो रहे होते, वे आराम से सो रहे होते, वे ऐसे करके कान ऊँचे करते। तब हम समझ जाते कि चौंका बेचारा हमारे कारण। हम ऐसे कैसे जन्मे इस मुहल्ले में कि हमसे कुत्ते भी डर जाते हैं। इसलिए पहले से, दूर से ही जूते निकालकर हाथ में लेकर आता और चुपके से आ जाता, लेकिन उसे चौंकने नहीं देता था। यह छोटी उम्र में हमारा प्रयोग। अपने कारण चौंका न?

प्रश्नकर्ता : हाँ, उसकी नींद में भी विक्षेप पड़ा न?

दादाश्री : हाँ, फिर वह चौंका न, तो अपना स्वभाव नहीं छोड़ेगा। फिर शायद कभी भौंके भी सही, स्वभाव जो ठहरा। इसके बजाय तो सोने दें, तो क्या बुरा? इससे मुहल्ले वालों को तो न भौंके।

इसलिए अभयदान, किसी जीव को किंचित्मात्र दुःख नहीं हो, ऐसे भाव पहले रखने और फिर वे प्रयोग में आते हैं। भाव किए हों तो प्रयोग में आते हैं। लेकिन भाव ही नहीं किए हों तो? इसलिए इसे बड़ा दान कहा भगवान ने। उसमें पैसों की कोई ज़रूरत नहीं। सर्वोच्च दान यही है, लेकिन यह मनुष्य के बस में नहीं। लक्ष्मी वाले भी ऐसा नहीं कर सकते। इसलिए लक्ष्मी वालों को लक्ष्मी से (दान) पूरा कर देना चाहिए।

यानी इन चार प्रकार के दान के अलावा अन्य किसी प्रकार का दान नहीं है, ऐसा भगवान ने कहा है। बाकी सब तो सिर्फ दान की बातें करते हैं, वे सब कल्पनाएँ हैं। ये चार प्रकार के ही दान हैं, आहारदान, औषधदान, फिर ज्ञानदान और अभयदान। हो सके तब तक अभयदान की भावना मन में रखनी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अभयदान में से ये तीनों दान निकल आते हैं। इस भाव में से?

दादाश्री : नहीं, ऐसा है कि अभयदान तो उच्च मनुष्य कर सकता है। जिसके पास लक्ष्मी नहीं होगी, ऐसा साधारण मनुष्य भी यह कर सकता है। ऊँचे पुरुषों के पास लक्ष्मी हो या नहीं भी हो। यानी लक्ष्मी के साथ उनका व्यवहार नहीं, लेकिन अभयदान तो वे अवश्य कर सकते हैं। पहले लक्ष्मीपति अभयदान करते थे, लेकिन अभी उनसे वह नहीं हो सकता, वे कच्चे होते हैं। लक्ष्मी ही कमा लाए हैं न, वह भी लोगों को डरा-डराकर।

प्रश्नकर्ता : भयदान किया है?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं कह सकते। ऐसा करके भी ज्ञानदान में खर्च करते हैं न! यहाँ से ऐसे चाहे जो करके आया, लेकिन यहाँ ज्ञानदान में खर्च करते हैं। वह उत्तम है, ऐसा भगवान ने कहा है।

ज्ञानी ही दें, 'यह' दान

इसलिए श्रेष्ठ दान अभयदान, दूसरे नंबर पर ज्ञानदान। अभयदान की भगवान ने भी प्रशंसा की है। पहला, कोई भी तुझसे भयभीत नहीं हो, ऐसा अभयदान दे। दूसरा ज्ञानदान, तीसरा औषधदान और चौथा आहारदान।

ज्ञानदान से भी श्रेष्ठ अभयदान! लेकिन लोग अभयदान दे नहीं सकते न! वह ज्ञानी अकेले ही अभयदान देते हैं। ज्ञानी और ज्ञानी का परिवार होता है, वे अभयदान देते हैं। ज्ञानी के फॉलोअर्स (अनुयायी) होते हैं, वे अभयदान देते हैं। किसी को भय लगे नहीं उस प्रकार रहते हैं। सामने वाला भय रहित रहे, उस प्रकार बर्तते हैं। कुत्ता भी भड़के नहीं इस प्रकार उनका वर्तन होता है। क्योंकि किसी को भी दुःख दिया तो खुद के भीतर पहुँचा। सामने वाले को दुःख दिया कि खुद के भीतर पहुँचा। इसलिए हमसे किसी भी जीव को किंचित्मात्र भय नहीं हो ऐसे रहना चाहिए।

'लक्ष्मी' तीनों में आती है

प्रश्नकर्ता : तो क्या लक्ष्मीदान का स्थान ही नहीं है?

दादाश्री : लक्ष्मीदान, वह ज्ञानदान में आ गया। अभी आप पुस्तकें छपवाओ न, तो उसमें लक्ष्मी आ गई, वह ज्ञानदान है।

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी द्वारा ही सब होता है न? अन्नदान भी लक्ष्मी द्वारा ही दिया जाता है न?

दादाश्री : औषध देनी हो तो भी हम सौ रुपए का औषध लाकर उसे दें, तब न? मतलब लक्ष्मी तो सभी में खर्च करनी ही है, लेकिन लक्ष्मी का इस तरह दान हो, तो सब से अच्छा।

वह किस तरह दी जाए?

प्रश्नकर्ता : इसलिए दानों में लक्ष्मी का सीधा वर्णन नहीं है।

दादाश्री : हाँ, सीधे देनी भी नहीं चाहिए। दो इस तरह कि ज्ञानदान के रूप में अर्थात् पुस्तकें छपवाकर दो या फिर आहार खिलाने के लिए तैयार करके दो। सीधे लक्ष्मी देने का कहीं भी कहा नहीं है।

स्वर्ण दान

प्रश्नकर्ता : अपने धर्म में वर्णन है कि पहले तो स्वर्ण दान देते थे, वह भी लक्ष्मी ही कहलाता है न?

दादाश्री : हाँ, वह स्वर्णमुद्रा का दान था न, वह तो अमुक प्रकार के लोगों को ही दिया जाता था। वह सभी लोगों को नहीं दिया जाता था। स्वर्ण दान तो, अमुक श्रमण ब्राह्मणों को, उन सब को जिनकी बेटी की शादी अटकी हो। दूसरा, संसार चलाने के लिए वे सभी को देते थे। बाकी अन्य सब को स्वर्ण दान नहीं दिया जाता था। व्यवहार में रहे हों, श्रमण हों, उन्हें ही दिया जाना चाहिए। श्रमण यानी वे किसी से माँग नहीं सकते थे। उन दिनों बहुत अच्छे रास्ते धन खर्च होता था। यह तो अब ठीक है। भगवान के मंदिर बनते हैं न, वे भी 'ऑन' के पैसों से बनते हैं। इस युग का असर है न!

ज्ञानी की दृष्टि से...

प्रश्नकर्ता : विद्यादान, धनदान, इन सभी दानों में आपकी दृष्टि से कौन सा दान श्रेष्ठ है? कई बार इसमें द्विधा उत्पन्न होती है।

दादाश्री : विद्यादान उत्तम माना जाता है। लक्ष्मी हो उसे विद्यादान, ज्ञानदान में लक्ष्मी देनी चाहिए। ज्ञानदान यानी पुस्तकें छपवाना या दूसरा और कुछ करना। ज्ञान का प्रसार किस तरह हो? उसके लिए ही पैसे खर्च करने चाहिए। लक्ष्मी हो उसे और लक्ष्मी न हो उसे अभयदान

का उपयोग करना चाहिए। किसी को भय नहीं हो, उस तरह हमें संभलकर चलना चाहिए। किसी को दु:ख नहीं हो, भय नहीं हो वह अभयदान कहलाता है।

दान के बारे में, लोग नाम कमाने के लिए दान देते हैं, वह योग्य नहीं है। नाम कमाने के लिए तो स्मृतिस्थंभ खड़े करते हैं न! और स्तंभ किसी के रहे नहीं, और यहाँ दिया हुआ साथ में आता कब है? विद्या फैले, ज्ञान फैले ऐसा कुछ करें, तो वह अपने साथ आता है।

जो उपयोगी हो, वह पुस्तक काम की

प्रश्नकर्ता : धर्म की लाखों पुस्तकें छपती हैं, लेकिन कोई पढ़ता नहीं है।

दादाश्री : वह ठीक है। आपकी यह बात सही है, कोई पढ़ता नहीं। यों की यों पुस्तकें पड़ी रहती हैं सब। जो पढ़ी जाएँ, वैसी पुस्तक हो तो काम की। आपका कहना ठीक है। अभी कोई पुस्तक पढ़ी नहीं जाती। निरी धर्म की ही पुस्तकें छपवाते रहते हैं। वे महाराज क्या कहते हैं? मेरे नाम का छपवाओ। वे महाराज अपना नाम डालते हैं। अपने दादागुरु का नाम डालते हैं। यानी, हमारे दादा ये थे, उनके दादा के दादा और उनके दादा... वहाँ तक पहुँचते हैं। लोगों को कीर्ति कमानी है। और उसके लिए धर्म की पुस्तकें छपवाते हैं। धर्म की पुस्तक ऐसी होनी चाहिए कि ज्ञान हमें काम आए। ऐसी पुस्तक हो तो लोगों को काम आएँ। ऐसी पुस्तक छपी हो वह काम की, नहीं तो यों ही भटकने का क्या अर्थ? और वह भी हर कोई नहीं पढ़ता। एक बार पढ़कर रख देते हैं, फिर कोई पढ़ता नहीं है। और एक बार भी कोई पूरा पढ़ता नहीं है। लोगों को काम लगे ऐसा छपवाया हो तो हमारे पैसों का सदुपयोग हो और वह भी पुण्य हो तभी। पैसे अच्छे हों तभी छपवा सकते हैं, नहीं तो छपवा नहीं सकते। ऐसे संयोग बैठते नहीं न! पैसे तो आएँगे

और जाएँगे और क्रेडिट कभी भी डेबिट हुए बिना रहता नहीं। आपके यहाँ कैसा नियम है? क्रेडिट होता रहता है या डेबिट भी होता है?

प्रश्नकर्ता : दोनों साइड हैं।

दादाश्री : यानी हमेशा क्रेडिट-डेबिट ही हुआ करता है।

प्रश्नकर्ता : वही होना चाहिए।

दादाश्री : लेकिन उसके दो रास्ते हैं। डेबिट या तो अच्छे रास्ते जाता है या तो गटर में जाता है। लेकिन उसमें से एक रास्ते से जाता है। पूरी मुंबई का धन गटर में ही जाता है! सारा धन ही गटर में जाता है...

मुंबई यानी पुण्यवानों का मेला

प्रश्नकर्ता : बड़े से बड़े दान मुंबई में ही होते हैं। लाखों-करोड़ों रुपए दान में दिए जाते हैं।

दादाश्री : हाँ, लेकिन वे दान कीर्तिदान हैं सब और कितनी ही अच्छी चीज़ें भी हैं। औषधदान होता है, ऐसी कई अच्छी चीज़ें हैं। यानी दूसरा भी बहुत है मुंबई में।

प्रश्नकर्ता : उन सभी को लाभ मिलता है या नहीं?

दादाश्री : बहुत लाभ मिलता है। वे तो छोड़ेंगे नहीं न, वह लाभ! लेकिन इस मुंबई में धन कितना सारा है? इस कारण से तो, यहाँ कितने सारे हॉस्पिटल हैं। इस मुंबई का धन ढेर सारा, सागर जितना धन है और वह सागर में ही जाता है।

प्रश्नकर्ता : मुंबई में ही लक्ष्मी मिलती है, उसका क्या कारण है?

दादाश्री : मुंबई में ही लक्ष्मी मिलती है? नियम ही ऐसा है कि मुंबई में सब से अच्छी चीज़ खिंचकर आ जाती है।

प्रश्नकर्ता : वे भूमि के गुण हैं?

दादाश्री : भूमि के ही तो। मुंबई में सभी बेहतर चीज़ें खिंच आती हैं। मिर्ची भी उच्चतम, महान पुरुष, वे भी मुंबई में होते हैं और नीच से नीच, नालायक मनुष्य, वे भी मुंबई में होते हैं। मुंबई में दोनों क्वॉलिटी होती है। यदि गाँवों में ढूँढने जाओगे तो नहीं मिलेगा।

प्रश्नकर्ता : मुंबई में समदृष्टि वाले लोग हैं न?

दादाश्री : यह पुण्यवानों का मेला है। पुण्यवान लोगों का मेला है एक तरह का। और सब पुण्यवान साथ में खिंच आते हैं।

मुंबई के लोग सब निबाह लेते हैं। वे दूसरा कुछ नहीं करते। और खुद के पैर पर कहीं किसी का जूता आ जाए न, तो प्लीज़, प्लीज़ करते हैं। मारते नहीं हैं। प्लीज़, प्लीज़ करते हैं। और गाँव में तो मारें। इसलिए ये मुंबई के लोग डेवेलप कहलाते हैं।

धन चला गटर में

लोगों का धन गटर में ही जा रहा है न, अच्छे रास्ते किसी पुण्यवान का ही जाता है न! धन गटर में जाता है क्या?

प्रश्नकर्ता : सब जा ही रहा है न!

दादाश्री : इस मुंबई के गटर में तो बहुत सारा धन, जत्थेबंद धन चला गया है। निरा मोह का, मोह वाला बाज़ार न! तेज़ी से धन चला जाता है। धन ही खोटा है न! धन भी सच्चा नहीं। सच्चा धन होता है, तो सही रास्ते पर खर्च होता है।

अभी पूरी दुनिया का धन गटर में जा रहा है। इन गटरों के पाइप चौड़े किए हैं, वह किसलिए कि धन को जाने के लिए स्थान चाहिए न? कमाया हुआ सब खा-पीकर बहकर गटर में जाता है। एक पैसा सच्चे

मार्ग पर जाता नहीं, और जो पैसे खर्चते हैं, कॉलेज में दान दिया, फलाँ दिया, वह सब इगोइज़म है। इगोइज़म बिना का पैसा जाए तो वह सच्चा कहलाता है। बाकी यह तो अहंकार को पोषण मिलता रहता है, कीर्ति मिलती रहती है आराम से। लेकिन कीर्ति मिलने के बाद उसका फल आता है। फिर वह कीर्ति जब पलट जाए तब क्या होता है? जब अपकीर्ति होती है तब *दुःख* ही *दुःख* हो जाता है। इससे अच्छा तो कीर्ति की आशा ही नहीं रखनी चाहिए। कीर्ति की आशा रखेंगे, तभी अपकीर्ति आएगी न? जिसे कीर्ति की आशा नहीं है, उसे अपकीर्ति आएगी ही क्यों?

अच्छे काम में खर्च करो

पैंसे तो खत्म भी हो जाते हैं और घड़ी में भर भी जाते हैं। अच्छे काम के लिए राह मत देखना। अच्छे काम में खर्च हो, नहीं तो गटर में तो गया ही है लोगों का धन। मुंबई में करोड़ों रुपए गटर में गए हैं लोगों के, घर में खर्च किया व जो औरों के लिए खर्च नहीं किया, वह सारा गटर में गया। तो अब पछता रहे हैं। मैं कहता हूँ कि 'गटर में गया', तब कहते हैं कि 'हाँ, ऐसा ही हुआ'। तब भाई! पहले से ही सावधान रहना था न? अब जब फिर से आए तब सावधान रहना। तब कहते हैं, 'हाँ, अब वापस कच्चा नहीं पडूँगा'। फिर से आएगा तो सही न! धन तो घटता-बढ़ता रहेगा। कभी दो वर्ष खराब जाते हैं, फिर पाँच साल अच्छे आएँ, ऐसा चलता रहता है। लेकिन अच्छे काम में खर्च किया, वह तो काम आएगा न? उतना ही अपना, बाकी सब पराया।

इतना कमाया लेकिन कहाँ गया? गटर में। धर्म के लिए दिया? तब कहेगा, उसके लिए पैसे तो मिलते ही नहीं, इकट्ठे होते ही नहीं तो दूँ किस तरह? तब धन कहाँ गया? यह तो कौन उगाता है और कौन खाता है? जो कमाता है, उसका धन नहीं। जो खर्च करे उसका धन। इसलिए जितने नए ओवरड्राफ्ट भेजे, वे आपके। अगर नहीं भेजे हैं तो आप जानो।

दान अर्थात् बो कर काटो

प्रश्नकर्ता : आत्मा और दान में कोई संबंध नहीं है तो फिर यह दान करना ज़रूरी है या नहीं?

दादाश्री : दान यानी क्या कि देकर लो। जगत् प्रतिघोष स्वरूप है। इसलिए जो आप करो वैसा प्रतिघोष सुनने को मिलेगा, उसके ब्याज के साथ। इसलिए आप दो और लो। यह पिछले अवतार में दिया, अच्छे कार्य में पैसे खर्च किए थे, ऐसा कुछ किया था, उसका हमें फल मिला। अब फिर ऐसा नहीं करो तो धूलधानी हो जाएगा। हम खेत में से गेहूँ तो ले आएँ चार सौ मन, लेकिन भाई वह पचास मन बोने नहीं गया तो फिर?

प्रश्नकर्ता : तो उगेंगे नहीं।

दादाश्री : ऐसा है यह सब। इसलिए देना। उसका प्रतिघोष होगा ही, वापस आएगा, अनेक गुना होकर। पिछले अवतार में दिया था, इसलिए तो अमरीका आ पाए, नहीं तो अमरीका आना आसान है क्या? कितने पुण्य किए हों, तब प्लेन में बैठने को मिलता है। कितने ही लोगों ने तो प्लेन देखा तक नहीं है।

लक्ष्मी वहीं वापस आती है

आपका घर पहले श्रीमंत था न?

प्रश्नकर्ता : ऐसे सभी पूर्वकर्म के पुण्य।

दादाश्री : लोगों की कितनी हेल्प की हो, तब जाकर हमारे यहाँ लक्ष्मी आती है, नहीं तो लक्ष्मी आएगी ही नहीं न! जिसे ऐसी इच्छा है कि 'ले लें', उसके पास लक्ष्मी नहीं आती। यदि आए तो चली जाती है, रुकती नहीं है। 'कुछ भी करके ले लेना है', उसके वहाँ लक्ष्मी आती नहीं। लक्ष्मी तो देने की इच्छा वाले के यहाँ ही आती

हैं। जो औरों के लिए घिसे, ठगे जाएँ, नोबिलिटी रखें, वहाँ आती हैं। ऐसा लगता है कि चली गई लेकिन आकर फिर वहीं खड़ी रहती है।

देखना! दान रह न जाए

वह तो आए, तभी दिया जाए न। और कुछ नहीं हो तो मन में क्या सोचें, जानते हो? जब मेरे पास आएँ तब दे देने हैं। और जब आएँ, तब गड्डी एक ओर रख देता है। नहीं तो मनुष्य का स्वभाव कैसा है कि कहता है, 'अभी तो आ रहे हैं। डेढ़ लाख हैं, दो लाख पूरे हो जाएँ, फिर दूँगा।' और वे वैसे के वैसे रह जाते हैं। ऐसे कामों में तो आँख मींचकर जितना दे दिया, वही सोना।

प्रश्नकर्ता : दो लाख हो जाएँ, तब खर्च करूँ, ऐसा कहने वाला व्यक्ति ऐसे करते-करते ही चला जाए तो?

दादाश्री : वह जा भी सकता है और रह भी सकता है। रह जाए तो भी कुछ होगा नहीं। जीव का स्वभाव ही ऐसा है। फिर जब नहीं हो पाता तब कहेगा 'मेरे पास आएँ तो तुरंत दे देने हैं! आएँ कि तुरंत दे देने हैं। ' अब, जब आते हैं तब यह माया उलझा देती है।

यदि किसी आदमी ने साठ हज़ार रुपए वापस नहीं दिए, तब कहेगा, 'चलेगा अब'। कहेगा, 'अपने नसीब में नहीं थे'। वहाँ छोड़ देता है लेकिन यहाँ नहीं छूटते। मनुष्य का स्वभाव ही ऐसा है। माया उलझाती है उसे। वह तो यदि हिंमत करे तभी हो पाता है। इसलिए हम ऐसा कहते हैं कि 'कुछ कर' फिर यह माया नहीं उलझाएगी। फूल नहीं तो फूल की पँखुड़ी (ज़्यादा नहीं तो थोड़ा)। वह भी सिर्फ एक उँगली का आधार देने की ज़रूरत है, अपने-अपने सामर्थ्य के अनुसार। बीमार व्यक्ति को भी यों हाथ लगाने में क्या हर्ज है?

सच्चा दानवीर

कभी भी कम न पड़े, उसी को कहते हैं लक्ष्मी। धर्म के लिए

तो यदि फावड़े से खोद-खोदकर देते रहें तो भी कम न पड़े, उसे लक्ष्मी कहते हैं। ये तो यदि धर्म में देते हैं तो बारह महीने में दो दिन दिया, उसे लक्ष्मी कहते ही नहीं। एक दानवीर सेठ थे। अब दानवीर नाम कैसे पड़ा? उसके वहाँ सात पुश्तों से धन देते ही रहते थे। फावड़े से खोदकर ही देते थे। जो आया उसे देते। आज फलाँ आया कि मुझे बेटी ब्याहनी है, तो उसे दिए। कोई ब्राह्मण आया उसे दिए। किसी को दो हज़ार की ज़रूरत हो तो उसे दिए। साधु-संतों के लिए, जगह बनवाई थी, वहाँ सभी साधु-संतों की भोजन व्यवस्था। मतलब ज़बरदस्त दान चलता था, इसलिए दानवीर कहलाए। हमने यह देखा था सब। हर एक को देते रहते थे, वैसे-वैसे धन बढ़ता रहता था।

धन का स्वभाव कैसा है? यदि किसी अच्छी जगह पर दान में जाए तो बहुत अधिक बढ़ता है, ऐसा धन का स्वभाव है। और यदि जेबें काटीं तो आपके घर कुछ नहीं रहेगा। इन सभी व्यापारियों को इकट्ठा करें और हम पूछें कि भाई! कैसा है आपको? बैंक में दो हज़ार तो होंगे न? तब कहेंगे कि साहब, बारह महीनों में लाख रुपए आए, लेकिन हाथ में कुछ भी नहीं है। इस पर से तो कहावत पड़ी कि चोर की माँ कोठी में मुँह डालकर रोए। कोठी में कुछ होता नहीं, फिर रोएगी ही न।

लक्ष्मी का प्रवाह दान है और जो सच्चा दानी है, वह कुदरती रूप से ही एक्सपर्ट होता है। मनुष्य को देखते ही समझ लेता है कि भाई ज़रा ऐसा लगता है। इसलिए कहेगा कि भाई बेटी के ब्याह के लिए नक़द पैसा नहीं मिलेगा, तुझे जो कुछ कपड़े-लत्ते चाहिए, दूसरा सब चाहिए, वह ले जाना। और कहे कि बेटी को यहाँ बुला ला। फिर लड़की को कपड़े-ज़ेवर सब दे दे। सगे-संबंधियों को मिठाई अपने घर से भेज दे, ऐसे व्यवहार सब संभाल लेते हैं। लेकिन समझ जाते हैं कि यह *नंगोड़* (बेशर्म) है। नक़द हाथ में देने लायक नहीं है। यानी दान देने वाले भी बहुत एक्सपर्ट होते हैं।

दान किसे दिया जाए?

आप गरीब को पैसे दो और पता लगाओ तो उसके पास पौने लाख रुपए पड़े होंगे। क्योंकि वे लोग गरीबी के नाम पर पैसे इक्ट्ठे करते हैं। सब व्यापार ही चल रहा है। दान तो कहाँ देना है? जो लोग माँगते नहीं और अंदर दुःखी होते रहते हैं, और दब-दबकर चलते हैं, वे कॉमन लोग हैं, वहाँ देना है। उन लोगों को बहुत उलझन है, उस मध्यमवर्ग को।

दान समझ सहित

एक आदमी के मन में ज्ञान हुआ। क्या ज्ञान हुआ? कि ये लोग ठंड से मर जाते होंगे। यहाँ घर में भी ठंड में रहा नहीं जाता है। अरे, हिमपात होने वाला है और इन फुटपाथ वालों का क्या होगा? ऐसा उसे ज्ञान हुआ, यह एक प्रकार का ज्ञान ही कहलाए न! ज्ञान हुआ और उसके संयोग सीधे थे। बैंक में पैसा था, इसलिए सौ-सवा सौ कंबल ले आया, हलकी क्वॉलिटी के! और सुबह चार बजे जाकर, दूसरे दिन ओढ़ाएँ सब को, जहाँ सो रहे थे वहाँ जाकर ओढ़ाएँ। फिर पाँच-सात दिन के बाद वहाँ फिर गया न, तब कंबल-वंबल कुछ दिखाई नहीं दिए। सारे नए के नए कंबल बेचकर पैसे ले लिए उन लोगों ने।

इसलिए मैं कहता हूँ कि नहीं देने चाहिए ऐसे। ऐसे दिया जाता है क्या? उन्हें तो रविवार की बाज़ार में पुराने कंबल मिलते हैं न, वे लाकर दें। उन्हें कोई बाप भी नहीं मोल लेगा, उसके पास से। हमने उसके लिए सत्तर रुपए का बजट बनाया हो तो सत्तर का एक कंबल लाने के बजाय, पुराने तीन मिलते हों तो तीन देना। तीन ओढ़कर सो जाना, कोई बाप भी लेने वाला नहीं मिलेगा।

अर्थात् इस काल में दान देना हो तो बहुत सोच समझकर देना। पैसा मूलतः स्वभाव से ही खोटा है। दान देने के लिए भी बहुत सोचोगे

तब दान दे पाओगे, नहीं तो दान भी नहीं दे पाओगे। और पहले सच्चा रुपया था न, अतः जहाँ दो वहाँ सच्चा दान ही होता था।

अभी नक़द रुपया नहीं दे सकते, आराम से कहीं से खाने की चीज़ खरीदकर बाँट देना। मिठाई लाए हों तो मिठाई बाँट देना। मिठाई का पैकेट दिया तो वे मिठाई वाले से कहेंगे, 'आधी कीमत दे दे!' अब इस दुनिया का क्या करें? हम आराम से चिवड़ा, मुरमुरे वगैरह सब और पकौड़े लेकर उन्हें तोड़कर दे दें। 'ले भाई! हर्ज क्या है? और यह दही लेता जा।' किसलिए ऐसे तोड़कर दिए, कहेगा? उसे वहम न पड़े इसलिए। 'दही भी ले जा। दहीबड़े बन जाएँगे तेरे लिए।' अरे! लेकिन क्या करें फिर? यह कुछ तो होना चाहिए न?

यह तो पहुँच पाएँ ऐसा नहीं है। और माँगने आए तब भी दे देना, हाँ। लेकिन नक़द मत देना, वर्ना दुरुपयोग होगा इन सब का। ऐसा सिर्फ हमारे देश में ही है। संसार में इस इन्डियन पज़ल को कोई सॉल्व नहीं कर सकता!

यह कैसे? यह क्या है? इसे सॉल्व करने भेजें कि 'भैया हमारे यहाँ यह क्या है? ये कंबल दान में दिए थे, वे कहाँ गए? इसकी खोज करो।' तब वे कहें कि, 'सी.आई.डी. को लाओ।' 'अरे, सी.आई.डी. का काम यह नहीं है। हम तो इसे बिना सी.आई.डी. के ही पकड़ लेंगे। यह पज़ल इन्डियन पज़ल है। आपसे सॉल्व नहीं होगा। आपके देश में सी.आई.डी. वाले पकड़ लाते हैं। हमारे देश वाले क्या करते हैं, वह हम जानते हैं भाई!' अगले दिन जाओ व्यापारी के यहाँ।

अतः पैसों में बरकत कब आएगी? कुछ नियम होना चाहिए अथवा नीति होनी चाहिए। साधारण तो होनी चाहिए न? काल ज़रा विचित्र है। साधारण नीति तो होनी चाहिए न? यों ही कैसे चलेगा?

जब सब बेच देता है, तब बेटियों भी बेच देता हैं। लक्ष्मी के

लिए बेटियाँ भी बेची हैं। वहाँ तक पहुँच गए हैं अंत में! अरे, ऐसा नहीं करते!

दान में नक़द रुपए नहीं देने चाहिए। उसे मेन्टेनन्स के लिए हेल्प करना। व्यवसाय पर लगाना। हिंसक मनुष्य को रुपया दोगे तो वह हिंसा अधिक करेगा।

दान, लेकिन उपयोगपूर्वक

पैसे खर्च हो जाएँगे, ऐसी जागृति रखनी ही नहीं चाहिए। जिस समय जो खर्च हो वह सही। इसलिए पैसे खर्च करने को कहा ताकि लोभ छूटे और बार-बार दे सकें।

उपयोग, वह जागृति है। हम शुभ करें, दान दें, वह दान कैसा? जागृतिपूर्वक का कि लोगों का कल्याण हो। कीर्ति-नाम हमें प्राप्त नहीं हो, इसलिए गुप्त रूप से देते हैं। यह जागृतिपूर्वक कहलाता है न! वह उपयोग कहलाता है। दूसरे तो, नाम नहीं छपा हो तो दूसरी बार देते नहीं।

ऐसा है, शुभमार्ग में भी जागृति कब कहलाती है? यदि इस भव में और परभव में लाभदायी हो, ऐसा शुभ हो, तो वह जागृति कहलाती है। वर्ना, वह दान करता है, सेवा करता है लेकिन उसे आगे की कुछ भी जागृति नहीं होती। जागृतिपूर्वक सभी क्रियाएँ करें तो अगले जन्म का हित होगा, वर्ना सब नींद में जाएगा। यह दान किया वह सब नींद में गया! जागते हुए चार आने भी जाएँ तो बहुत हो गया! यह दान दे और भीतर यहाँ की कीर्ति की इच्छा हो तो वह सब नींद में गया। परभव के हित के लिए जो दान यहाँ दिया जाए, वह जागृत कहलाता है। हिताहित का भान अर्थात् खुद का हित किसमें है और खुद का अहित किसमें है और उसके अनुसार जागृति रहे वह! अगले जन्म का कुछ ठिकाना नहीं हो और यहाँ दान करता हो, उसे जागृत कैसे कहा जाए?

ऐसे अंतराय पड़ते हैं

यह भाई किसी को दान दे रहे हों, वहाँ पर कोई बुद्धिमान कहे कि 'अरे! इसे क्यों देते हो?' तब ये भाई कहेंगे 'अब देने दो न, गरीब है'। ऐसा करके दान देता है और वह गरीब ले लेता है। लेकिन वह बुद्धिमान जो बोला, उससे उसने अंतराय डाला। तो फिर उसे दुःख में भी कोई दाता नहीं मिलेगा। जहाँ खुद अंतराय डालता है, उस जगह पर ही वह अंतराय काम करता है।

प्रश्नकर्ता : वाणी से अंतराय नहीं डाले हों, लेकिन मन से अंतराय डाले हों तो?

दादाश्री : मन से डाले हुए अंतराय अधिक असर करते हैं। वे तो दूसरे अवतार में असर करते हैं और ये वाणी से बोला हुआ इस अवतार में असर करता है। वाणी निकली कि नक़द हुआ, कैश हुआ। इसलिए फल भी कैश आता है और मन से चित्रित किया, वह तो अगले अवतार में रूपक बनकर आएगा।

और ऐसे जाते हैं अंतराय

प्रश्नकर्ता : अर्थात् इतनी जागृति रखनी चाहिए कि ज़रा सा भी उल्टा-सीधा विचार नहीं हो।

दादाश्री : ऐसा हो सके, ऐसा नहीं है। विचार तो ऐसे हुए बिना रहेंगे ही नहीं। उन्हें हम मिटा दें, यही अपना काम। ऐसे विचार नहीं आएँ, ऐसा हम तय करें, वह निश्चय कहलाता है। लेकिन विचार ही नहीं आएँ, ऐसा वहाँ पर चलता नहीं। विचार तो आएँगे लेकिन बंध पड़ने से पहले मिटा देना चाहिए। आपको विचार आया कि 'इसे दान नहीं देना चाहिए'। लेकिन आपको ज्ञान दिया है इसलिए जागृति आएगी कि हमने बीच में अंतराय क्यों डाला? ऐसे फिर आप उसे मिटा दो। पोस्ट में खत डालने से पहले मिटा दो तो हर्ज नहीं न! लेकिन वह

तो, ज्ञान बिना कोई मिटाता नहीं न! अज्ञानी तो मिटाता ही नहीं न? हम उसे ऐसा कहें कि 'ऐसा उल्टा क्यों सोचा?' तब वह कहेगा कि 'ऐसा तो करना ही चाहिए था, यह आपके समझ में नहीं आएगा।' इस तरह फिर उसे दुगना करके मज़बूत कर देता है। अहंकार पागलपन ही करता है, नुकसान करता है, उसे कहते हैं अहंकर। खुद अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारता रहे, उसका नाम अहंकार।

अब तो हम पश्चाताप से सब मिटा सकते हैं और मन में निश्चय कर लें कि ऐसा नहीं कहना चाहिए। और जो कहा, 'उसके लिए क्षमा माँगता हूँ', तो मिट जाएगा। क्योंकि वह खत पोस्ट में नहीं गया है। उससे पहले हम बदल दें कि ''पहले हमने मन में जो सोचा था कि 'दान नहीं देना चाहिए'। वह गलत है, लेकिन अब हम सोचते हैं कि 'यह दान देना अच्छा है''। इससे उसके पहले वाला मिट जाएगा।

दान करना, लोगों पर उपकार करना, ओब्लाइजिंग नेचर रखना, लोगों की सेवा करना, इन सभी को रिलेटिव धर्म कहा है। उससे पुण्य बंधता है। और गालियाँ देने से, मारामारी करने से, लूट लेने से पाप बंधता है। पुण्य और पाप जहाँ हैं, वहाँ रियल धर्म है ही नहीं। पाप-पुण्य से रहित रियल धर्म है।

पाँचवाँ हिस्सा परायों के लिए

प्रश्नकर्ता : अगले जन्म के पुण्य के उपार्जन के लिए इस जन्म में क्या करना चाहिए?

दादाश्री : इस जन्म में जो पैसे आएँ उसका पाँचवाँ हिस्सा भगवान के मंदिर में डाल देना या फिर लोगों के सुख के लिए खर्च करना। इसलिए उतना तो वहाँ ओवरड्राफ्ट पहुँचा! ये पिछले जन्म के ओवरड्राफ्ट तो भोग रहे हो। इस जन्म का पुण्य है, वह आगे आएगा फिर। अभी की कमाई आगे चलेगी।

रिवाज, भगवान के लिए ही धर्म में दान

जब इन मारवाड़ी लोगों के यहाँ जाता हूँ तब पूछता हूँ 'धंधा कैसा चल रहा है?' तब कहते हैं 'धंधा तो अच्छा चल रहा है'। 'मुनाफा वगैरह?' तब कहते हैं 'दो-चार लाख तो हैं'। 'भगवान के यहाँ देना-करना?' 'बीस-पच्चीस प्रतिशत डाल आते हैं वहाँ, हर साल।' उनका क्या कहना कि खेत में बोएँगे तो दाने निकलेंगे न! बोए बिना दाने लेने कैसे जाऊँ? बोएँगे ही नहीं तो? इन मारवाड़ी लोगों के यहाँ यही रिवाज है कि भगवान के काम में डालने हैं। ज्ञानदान, भगवान में ऐसे अन्य जगह दान देना लेकिन उसमें दान नहीं, हाइस्कूल में, फलाँ में, ऐसे में नहीं। बस यही एक।

मंदिरों में या गरीबों में

प्रश्नकर्ता : हम मंदिर में गए थे न, वहाँ लोग करोड़ों रुपए पत्थरों के पीछे खर्च करते हैं। और भगवान ने कहा है कि ये जीते-जागते अंतर्यामी जो प्रत्येक जीवमात्र में विराजमान हैं। और जीवित लोगों को धमकाते हैं। उन लोगों को तड़पाते हैं और यहाँ पत्थर की मूर्तियों के पीछे करोड़ों रुपए खर्च करते हैं ऐसा क्यों?

दादाश्री : हाँ, लेकिन लोगों को तड़पातें हैं, वह तो उनकी नासमझी की वजह से तड़पाते हैं बेचारों को! क्रोध-मान-माया-लोभ की निर्बलता के कारण तड़पाते हैं न!

ऐसा है न, ये जो पैसे कमाने निकलते हैं, अब ऐसा होता है कि ठीक तरह से घर चले, फिर भी पैसे कमाने निकलते हैं। तब हम नहीं समझ जाएँगे कि ये अपने कोटा के उपरांत अधिक कोटा लेने को घूम रहे हैं? जगत् में तो कोटा सभी का समान है। लेकिन यह लोभी है जो अधिक कोटा ले जाता है। इसलिए उन कुछ लोगों के हिस्से में आता ही नहीं है। अब वह भी यों ही गप्प से नहीं मिलता, वह पुण्य से मिलता है।

पुण्य अधिक किया तो हमारे पास धन आया, उस धन को हम खर्च कर देते हैं वापस। हम जानें कि यह तो जमा होने लगा। खर्च कर दिया तो डिडक्शन (कम) हो जाएगा न? पुण्य जमा तो हो ही जाता है, लेकिन डिडक्शन करने का तरीका तो जानना चाहिए न?

अर्थात् लोग मंदिर आदि बनवाते हैं, ठीक करते हैं। उन्हें चाबी चाहिए। उन्हें दर्शन कहाँ करने हैं? वे जहाँ दर्शन करने जाएँ, वहाँ उन्हें शर्म नहीं आए ऐसा चाहते हैं। जीवितों के साथ उन्हें शर्म आती है और मूर्ति के पास तो आप कहो वैसे नाचता भी है। नाचता-कूदता है अकेला! लेकिन जीवित के साथ उसे शर्म आती है। ये (मूर्तियाँ) जीवित नहीं हैं ना और जीवित के पास कुछ नहीं हो पाता। और यदि जीवितों के पास किया तो उसका कल्याण हो जाए, परम कल्याण हो जाए, आत्यंतिक कल्याण हो जाए। लेकिन ऐसी शक्ति नहीं होती न! ऐसे पुण्य नहीं होते!

भगवान के पास रखे न, वह सब निष्काम नहीं, सकाम है। हे भगवान! बेटे के घर एक बेटा! मेरा बेटा पास हो जाए। घर पर बुड्ढे पिता हैं, उन्हें पक्षाघात हुआ है, वह मिट जाए। उसके लिए 'दो सौ और एक' रखता है। अब यहाँ तो कौन रखे? हमारा कोई ऐसा कारखाना है? और यहाँ लेगा भी कौन जो रखें?

वह भी हिंसा ही

प्रश्नकर्ता : व्यापारी मुनाफाखोरी करे, कोई उद्योगपति अथवा व्यापारी मेहनत की तुलना में कम मेहनताना दे अथवा बिना मेहनत की कोई कमाई हो, तो वह हिंसाखोरी कहलाती है?

दादाश्री : वह सारी हिंसाखोरी ही है।

प्रश्नकर्ता : अब फोकट की कमाई करके, यदि वह धन धर्म में खर्च करे तो वह किस प्रकार की हिंसा कहलाती है?

दादाश्री : जितना धर्मकार्य में खर्च किया, जितना त्याग कर गया, उतना कम दोष लगा। जितना कमाया था, लाख रुपए कमाया था, अब उस अस्सी हज़ार का दवाखाना बनवाया तो उतने रुपयों की ज़िम्मेदारी उसकी नहीं रही। बीस हज़ार की ही ज़िम्मेदारी रही। इसलिए वह अच्छा है, गलत नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लोग लक्ष्मी जमा करके रखते हैं, वह हिंसा कहलाएगी या नहीं?

दादाश्री : हिंसा ही कहलाएगी। जमा करना वह हिंसा है। दूसरे लोगों के काम लगता नहीं न!

जैसे आया, वैसे जाता है...

यह तो भगवान के नाम पर, धर्म के नाम पर सब चला है!

प्रश्नकर्ता : दान करने वाला मनुष्य तो ऐसा मानता है कि मैंने श्रद्धा से दिया है। लेकिन जिसे खर्च करना है वह कैसे करता है, उसका हमें क्या पता चले?

दादाश्री : लेकिन वह तो हमारे रुपए खोटे हों तो वे उल्टे रास्ते जाएँगे। जितना धन खोटा उतना गलत रास्ते जाता है और अच्छा धन हो, उतना अच्छे रास्ते जाता है।

निहाई की चोरी, सूई का दान

प्रश्नकर्ता : कई ऐसा कहते हैं कि दान करे तो देव बनता है, वह सही है?

दादाश्री : दान करें, फिर भी नर्क में जाएँ, ऐसे भी हैं। क्योंकि दान किसी के दबाव में आकर करते हैं। ऐसा है न कि इस दूषमकाल में दान कर पाएँ ऐसी लक्ष्मी ही नहीं होती है। दूषमकाल में जो लक्ष्मी

है, वह तो अघोर कर्तव्य वाली लक्ष्मी है। इसलिए उसका दान दें तो उल्टा नुकसान होता है। लेकिन फिर भी हम किसी दु:खी मनुष्य को दें, दान करने के बदले उसकी मुश्किल दूर करने के लिए कुछ करें तो अच्छा है। दान तो नाम कमाने के लिए करते हैं, उसका क्या अर्थ? भूखा हो उसे खाना दो, कपड़े नहीं हों तो कपड़ा दो। बाकी, इस काल में दान देने को रुपए कहाँ से लाएँ? बल्कि सब से अच्छा तो दान देने की ज़रूरत नहीं है, अपने विचार अच्छे करो। दान देने के लिए धन कहाँ से लाएँ? सच्चा धन ही नहीं आया न! और सच्चा धन सरप्लस रहता ही नहीं। ये जो बड़े-बड़े दान देते हैं न, वह तो सब खाते के बाहर का, ऊपर का धन आया है, वह है। फिर भी दान जो देते हैं, उनके लिए गलत नहीं है। क्योंकि गलत रास्ते लिया और अच्छे रास्ते दिया, फिर भी बीच में पाप से मुक्त तो हुआ! खेत में बीज बोया गया, इसलिए उगा और उतना तो फल मिला!

प्रश्नकर्ता : पद में एक पंक्ति है न कि *'दाणचोरी करनाराओ, सोयदाने छूटवा मथे'।* तो इसमें एक जगह *दाणचोरी* (गलत तरीके से बहुत सारा धन कमाना) की और दूसरी जगह दान किया तो उसने उतना तो प्राप्त किया न? ऐसा कह सकते हैं?

दादाश्री : नहीं, प्राप्ति हुई ऐसा नहीं कहलाता। वह तो नर्क में जाने की निशानी कहलाती है। वह तो नीयतचोर है। *दाणचोर* ने चोरी की और सूई का दान किया, इसके बजाय दान नहीं करता और सीधा रहे तो भी अच्छा। ऐसा है न कि छ: महीने की जेल की सज़ा अच्छी। बीच में दो दिन बाग़ में ले जाएँ, उसका क्या अर्थ?

यह तो क्या कहना चाहते हैं कि यह सब काला बाज़ार, *दाणचोरी* सब किया और बाद में पचास हज़ार का दान देकर अपना खुद का नाम खराब न दिखे, खुद का नाम न बिगड़े, इसलिए यह दान देते हैं। इसे सूई का दान कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : मतलब सात्विक तो आज ऐसे नहीं हैं न?

दादाश्री : संपूर्ण सात्विक की तो आशा रख सकते ही नहीं न! लेकिन यह तो किसके लिए है कि जो बड़े लोग करोड़ों रुपए कमाते हैं और इस ओर एक लाख रुपए दान में देते हैं। वह किसलिए? नाम खराब नहीं हो इसलिए। इस काल में ही ऐसा सूई का दान चलता है। यह बहुत समझने जैसा है। दूसरे लोग दान देते हैं, उनमें अमुक गृहस्थ होते हैं। साधारण स्थिति के होते हैं। वे लोग दान दें उसमें हर्ज नहीं। यह तो, सूई का दान देकर खुद का नाम बिगड़ने नहीं देते। अपना नाम ढकने के लिए कपड़े बदल देते हैं! सिर्फ दिखावा करने के लिए ऐसे दान देते हैं!

अभी तो धनदान देते हैं या ले लेते हैं? और दान जो होते हैं, वे तो 'मीसा के' (*दाणचोरी* के)।

वह धन पुण्य बाँधे

प्रश्नकर्ता : दो नंबर के रुपयों का दान दे, तो वह नहीं चलेगा?

दादाश्री : दो नंबर का दान नहीं चलेगा। लेकिन फिर भी कोई मनुष्य भूखा मर रहा हो और दो नंबर का दान दें तो उसे खाने के लिए चलेगा न! दो नंबर में अमुक नियम से परेशानी आती है, लेकिन दूसरी तरफ हर्ज नहीं होता। वह धन होटल वाले को दें तो वह लेगा या नहीं लेगा?

प्रश्नकर्ता : ले लेगा।

दादाश्री : हाँ, वह व्यवहार शुरू ही हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : धर्म में दो नंबर का पैसा है, वह खर्च होता है अभी के जमाने में, तो उससे लोगों को पुण्योपार्जन होता है क्या?

दादाश्री : अवश्य होता है न! उसने त्याग किया न उतना!

अपने पास आए हुए का त्याग किया न! लेकिन उसमें हेतु के अनुसार फिर वह पुण्य ऐसा हो जाता है हेतु वाला! ये पैसे दिए, वह एक ही चीज़ नहीं देखी जाती। पैसों का त्याग किया वह निर्विवाद है। बाकी पैसा कहाँ से आया? हेतु क्या? यह सभी प्लस-माइनस होते-होते जो बाकी रहेगा वह उसका। उसका हेतु क्या है कि सरकार ले जाएगी, उसके बजाय इसमें डाल दो न!

निरपेक्ष लूटाओ

प्रश्नकर्ता : ऑन के पैसे भले ही खर्च होते हों, फिर भी धर्म की ध्वजा लग जाती है कि धर्म के नाम पर खर्चे।

दादाश्री : हाँ, लेकिन धर्म के नाम पर खर्चे तो अच्छा है। लेकिन ऑन के नाम से करते हैं। क्योंकि 'ऑन' बड़ा गुनाह नहीं है। 'ऑन' यानी क्या कि सरकारी टैक्स जो है, वह लोगों को भारी पड़ जाता है कि आप हमारी धारणा से अधिक लगाते हैं, इसलिए ये लोग छिपाते हैं।

प्रश्नकर्ता : कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा से जो दान करते हैं, उसकी भी शास्त्रों में मनाही नहीं है? उसकी निंदा नहीं की है?

दादाश्री : वह अपेक्षा न रखें तो उत्तम है। अपेक्षा रखते हैं, वह दान निर्मूल हो गया, सत्वहीन हो गया कहलाता है। मैं तो कहता हूँ कि पाँच ही रुपए दो लेकिन अपेक्षा बिना दो।

वह है कॅमोफ्लाज़ जैसा

प्रश्नकर्ता : दो नंबर के जो पैसे हैं, वे जहाँ जाएँ, वहाँ गड़बड़ होती है या नहीं?

दादाश्री : पूरी हेल्प नहीं करते। हमारे यहाँ भी आते हैं, लेकिन वे कितने? दस-पंद्रह प्रतिशत, लेकिन अधिक नहीं आते।

प्रश्नकर्ता : धर्म में हेल्प नहीं करते? जहाँ जाएँ वहाँ हेल्प नहीं होती उतनी?

दादाश्री : हेल्प नहीं करते। वैसे दिखने में हेल्प करते हैं, लेकिन फिर अस्त होते देर नहीं लगती। वे सब वॉर क्वॉलिटी के स्ट्रक्चर। वॉर क्वॉलिटी के स्ट्रक्चर बंधे सभी! आपने देखे हैं न! वे सभी कॅमोफ्लज़ (स्वाँग) हैं। मन में क्या खुश होना कॅमोफ्लज़ से?

श्रेष्ठी-शेट्टी-सेठ-शठ

पुराने समय में, उस वक्त दानवीर होते थे। दानवीर तो, जब मन-वचन-काया की एकता हो, तब दानवीर पैदा होते हैं और उन्हें भगवान ने श्रेष्ठी कहा था। उस श्रेष्ठी को अभी मद्रास में शेट्टी कहते हैं। अपभ्रंश होते-होते श्रेष्ठी में से 'शेट्टी' हो गया है वहाँ पर। वह हमारे यहाँ अपभ्रंश होते-होते 'शेठ' हो गया है।

एक मिल के सेठ के यहाँ मैं सेक्रेटरी से बात कर रहा था। मैंने पूछा कि 'सेठ कब आएँगे? दूसरे गाँव गए हैं वे?' वह कहता है, 'चार-पाँच दिन लगेंगे'। फिर मुझे कहता है, 'ज़रा मेरी बात सुनिए'। मैंने कहा, 'हाँ, भई'। तो वह कहता है, 'ऊपर की मात्रा निकाल देने जैसे हैं'। मैंने उसे समझाया कि 'अभी जब तक तू तनख्वाह खाता है, तब तक मत बोलना।' बाकी यदि मात्रा निकाल दें तो शेष क्या रहा?

प्रश्नकर्ता : 'शठ' रहा।

दादाश्री : फिर भी हम बोल नहीं सकते! ऐसी दशा हुई है। कैसे जगडुशा आदि सब सेठ हुए थे! वे सेठ कहलाते थे।

जैसा भाव, वैसा फल

कईयों को दान नहीं देना हो, मन में नहीं देना हो और वाणी

से कहें, मुझे देना है और वर्तन में रखें और दें। लेकिन मन में नहीं देना हो, इसलिए फल नहीं मिलता।

प्रश्नकर्ता : दादा जी, वह क्यों होता है ऐसा?

दादाश्री : एक मनुष्य मन से देता है, उसके पास साधन नहीं उतना और वाणी से बोलता है कि मुझे देना है, लेकिन दिया नहीं जाता। उसका फल अगले जन्म में मिलता है। क्योंकि वह देने के समान है। भगवान ने स्वीकार किया। आधा लाभ तो हो गया।

मंदिर में जाकर एक व्यक्ति ने एक ही रुपया दिया और एक सेठ ने एक हज़ार के नोट दान में दिए, यह देखकर अपने मन में हुआ कि 'अरे, मेरे पास होते तो मैं भी देता'। तब वहाँ अपना जमा होता है। नहीं है, इसलिए आप नहीं दे पाते। यहाँ तो, जो दिया उसकी कीमत नहीं है, भाव की कीमत है। वीतरागों का साइन्स है।

और देने वाला हो, उसका कब कितना गुना हो जाए। लेकिन वह कैसा? मन से देना है, वाणी से देना है, वर्तन से देना है, तो उसका फल तो इस दुनिया में क्या न कहें, वह पूछो! अभी तो सभी कहेंगे, फलाँ भाई के कारण मुझे देना पड़ा, नहीं तो मैं नहीं देता। फलाँ साहिब ने दबाव डाला इसलिए मुझे देना पड़ा। इसलिए वहाँ पर जमा भी वैसा ही होता है, हं। वह तो हमारा मन से, राज़ी-ख़ुशी से दिया हुआ काम का। ऐसा करते हैं लोग क्या? किसी के दबाव से देते हैं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, हाँ।

दादाश्री : अरे, कितने तो रौब जमाने के लिए देते हैं। नाम, खुद की इज़्ज़त बढ़ाने के लिए। मन में ऐसा रहता है, 'जाने दो न! देने जैसा नहीं है, लेकिन हमारा बुरा दिखेगा', तब ऐसा फल मिलता है। ऐसा सब, जैसा चित्रित करते हैं, वैसा फल मिलता है। एक व्यक्ति

के पास नहीं हों फिर भी यदि वह ऐसा कहे कि 'अगर मेरे पास होता तो मैं दे देता' तो कैसा फल मिलेगा?

स्थूल कर्म : सूक्ष्म कर्म

एक सेठ ने पचास हज़ार रुपए दान में दिए। तो उनके मित्र ने उनसे पूछा, 'इतने सारे रुपए दे दिए?' तब सेठ बोले, 'मैं तो एक पैसा भी दूँ वैसा नहीं हूँ। यह तो इस मेयर के दबाव से देने पड़े'। अब इसका क्या मिलेगा? पचास हज़ार का दान किया वह स्थूल कर्म, तो उसका फल सेठ को यहीं का यहीं मिल जाएगा, लोग वाह-वाह करेंगे, कीर्ति गाएँगे और सेठ ने भीतर सूक्ष्म कर्म में क्या चार्ज किया? तब कहते हैं, 'ऐसा हूँ कि एक पैसा भी न दूँ' उसका फल अगले जन्म में मिलेगा। तो अगले जन्म में सेठ एक पैसा भी दान में दे नहीं सकेंगे। अब ऐसी बारीक बात किसे समझ में आए?

वहीं यदि दूसरा कोई गरीब हो, उसके पास भी वे ही लोग जाएँ दान लेने, तो वह गरीब व्यक्ति क्या कहता है कि 'मेरे पास तो अभी पाँच ही रुपए हैं। ये सारे ले लीजिए। लेकिन अभी यदि मेरे पास पाँच लाख होते तो वे सारे के सारे दे देता!' ऐसा दिल से कहता है। अब इसने पाँच ही रुपए दिए, वह डिस्चार्ज में कर्मफल आया। लेकिन भीतर सूक्ष्म में क्या चार्ज किया? पाँच लाख रुपए देने का। इसलिए अगले जन्म में पाँच लाख दे पाएगा, डिस्चार्ज होगा तब।

एक मनुष्य दान दिया करता हो, धर्म की भक्ति किया करता हो, मंदिरों में पैसे देता हो, बाकी सब पूरे दिन धर्म किया करता हो, उसे जगत् के लोग क्या कहते हैं कि यह धर्मिष्ठ है। अब उस आदमी के भीतर क्या विचार होते हैं कि कैसे इकट्‌ठा करूँ और कैसे भोग लूँ! भीतर में तो उसे बिना हक़ की लक्ष्मी हड़प लेने की इच्छा बहुत होती है। बिना हक़ के विषय भोग लेने को ही तैयार होता है।

इसलिए भगवान उसका एक पैसा भी जमा करते नहीं। इसका क्या कारण? कारण यह कि वे सब स्थूल कर्म हैं और उन स्थूल कर्मों का फल यहीं का यहीं मिल जाता है। लोग इन स्थूल कर्मों को ही अगले भव के कर्म मानते हैं। लेकिन उसका फल तो यहीं का यहीं मिल जाता है। और सूक्ष्म कर्म कि जो अंदर बंध रहा है, जिसका लोगों को पता ही नहीं है। उसका फल अगले भव में मिलता है।

आज किसी आदमी ने चोरी की, वह चोरी स्थूल कर्म है। उसका फल इस भव में ही मिल जाता है। जैसे कि उसे अपयश मिलता है। पुलिस वाला मारे, वह सब फल उसे यहीं का यहीं मिल ही जाने वाला है।

लक्ष्मी के लिए चार्जिंग

प्रश्नकर्ता : सभी लोग लक्ष्मी के पीछे बहुत दौड़ते हैं। इसलिए उसका चार्ज अधिक होगा न? तो उसे अगले भव में लक्ष्मी अधिक मिलनी चाहिए न?

दादाश्री : हमें लक्ष्मी धर्म के रास्ते खर्च करनी है, ऐसा चार्ज किया हो तो अधिक मिलेगी।

प्रश्नकर्ता : लेकिन ऐसे, मन से भाव किया करे कि मुझे लक्ष्मी मिले तो अगले जन्म में, अत: ऐसे भाव किए, वह 'चार्ज' किया तो उसे कुदरत लक्ष्मी नहीं देगी?

दादाश्री : नहीं, नहीं, उससे लक्ष्मी नहीं मिलती। यह लक्ष्मी मिलने के जो भाव करते हैं न, उससे लक्ष्मी मिल रही हो तो भी नहीं मिलेगी। उल्टे अंतराय पड़ेगा। लक्ष्मी याद करने से नहीं मिलती, वह तो पुण्य करने से मिलती है।

'चार्ज' यानी पुण्य का चार्ज करे, तो लक्ष्मी मिलती है। वह भी,

सिर्फ लक्ष्मी नहीं मिलती। पुण्य के चार्ज में जिसकी इच्छा हो कि 'मुझे लक्ष्मी की बहुत ज़रूरत है', तो उसे लक्ष्मी मिलेगी। कोई कहे, 'मैं तो सिर्फ धर्म ही चाहता हूँ, तो उसे सिर्फ धर्म ही प्राप्त होगा और शायद पैसे नहीं भी हों'। फिर उस पुण्य का भी टेन्डर हमने भरा होता है कि 'मुझे ऐसा ही चाहिए'। वह मिलने में पुण्य खर्च होता है। कोई कहेगा, 'मुझे बंगले चाहिए, मोटर चाहिए, यह चाहिए, वह चाहिए'। तो उसमें उसका पुण्य खर्च हो जाएगा। धर्म में कुछ नहीं रहेगा। और कोई कहेगा, 'मुझे धर्म ही चाहिए, मोटरें नहीं चाहिए, मुझे तो इतने दो रूम होंगे तो भी चलेगा, लेकिन धर्म ही अधिक चाहिए'। तो उसे धर्म अधिक मिलता है और दूसरा सब कम मिलता है। इसलिए फिर वह खुद के हिसाब से पुण्य का टेन्डर भरता है।

ऐसी नीयत? वहाँ है दान फ़िजूल

अत: यह वीतराग विज्ञान आपको कितना मुक्त करे ऐसा सुंदर है। सोचने पर नहीं लगता? कितना सुंदर है! यदि समझे तो, 'ज्ञानीपुरुष' के पास से समझ ले और बुद्धि अपनी सम्यक् करवा ले तो काम चले ऐसा है। व्यवहार में लोग भी मेरे पास बुद्धि अपनी सम्यक् करवा लें, भले ही ज्ञान नहीं लिया हो, फिर भी मेरे साथ थोड़ा समय बैठे तो बुद्धि सम्यक् हो जाती है। जिससे उसका काम आगे चलता है! यह ज्ञान नहीं हो तो क्या दशा होगी? मनुष्य यदि ऐसा समझे तो काम का है!

प्रश्नकर्ता : ज्ञान लिए बगैर तो इसका पार ही नहीं आए ऐसा है।

दादाश्री : पार ही नहीं आए ऐसा है। वह तो बात ही करने जैसी नहीं है। वह पचास हज़ार रुपए का दान देता हो, फिर भी आपको वापस क्या कहता है? 'इस सेठ का दबाव है इसलिए दे रहा हूँ, नहीं तो दूँ नहीं।' सिर्फ खुद जाने उतना ही नहीं, लेकिन आपको

भी बताता है। फिर दूसरों को बताता है कि 'मैं तो ऐसा पक्का हूँ'। यह देख रहे हो न? बाहर तो यह सब.... फ़िज़ूल में ही बर्बाद हो गए। इसलिए जो इस सत्संग में पड़े रहे, उनका काम हो गया न! सारी दुनिया का झंझट चला गया न!

दान भी गुप्त रूप से

प्रश्नकर्ता : आत्मार्थी के लिए तो कीर्ति अवस्तु है न?

दादाश्री : कीर्ति तो बहुत नुकसानदायक चीज़ है। आत्मा के रास्ते पर कीर्ति तो उसकी बहुत फैलती है, लेकिन उस कीर्ति में उसे कोई इन्टरेस्ट नहीं होता। कीर्ति तो फैलेगी ही न! चमकीला हीरा होगा तो देखकर हर कोई कहेगा न कि 'कितनी अच्छी लाइट आ रही है, कैसी किरणें निकल रही हैं?' लोग कहते ज़रूर हैं, लेकिन उसे खुद को उसमें मज़ा नहीं आता। जबकि ये तो संसारिक संबंध की कीर्ति के ही भिखारी हैं। कीर्ति की भीख है इसलिए लाख रुपए हाइस्कूल में देते हैं, अस्पताल में देते हैं, लेकिन कीर्ति मिल जाए तो बहुत हो गया!

फिर वे भी व्यवहार में कहते हैं कि 'दान गुप्त रखना'। अब गुप्त रूप से कोई ही देगा। बाकी सब तो इसलिए देते हैं कि कीर्ति की भूख है। तब लोग भी बखान करते हैं कि 'भाई! यह सेठ, क्या कहने! लाख रुपए का दान दिया!' उतना उसका बदला यहीं का यहीं मिल गया।

अर्थात् देकर उसका बदला यहीं का यहीं ही ले लिया। और जिसने गुप्त रखा, उसने बदला लेने का अगले भव पर छोड़ा। बदला मिले बगैर तो रहता ही नहीं। आप लो या न लो लेकिन बदला तो उसका होता ही है।

अपनी-अपनी इच्छानुसार दान देना होता है। यह तो सब ठीक

है, व्यवहार है। कोई दबाव करे कि आपको देने ही पड़ेंगे। फिर फूलहार पहनाएँ, इसलिए देते हैं वे।

दान गुप्त होना चाहिए। जैसे ये मारवाड़ी लोग भगवान के पास चुपचाप डाल आते हैं न! किसी को मालूम नहीं चले तो वह उगेगा!

वह व्यवहार अच्छा कहलाता है

प्रश्नकर्ता : हीरा बा के देहान्त के बाद उनके पीछे आपने जो खर्च किया, वह व्यवहार में कैसा कहलाता है?

दादाश्री : वह संसार व्यवहार में अच्छा कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : हमें संसार व्यवहार में ही रहना है।

दादाश्री : संसार व्यवहार में है सही, लेकिन उसमें अच्छा दिखाई देता है यह। और वह अच्छा दिखाई दे इसलिए मैंने नहीं किया। वह तो हीरा बा की इच्छा थी इसलिए मैंने किया। यह मुझे अच्छे-गलत की पड़ी नहीं होती, फिर भी गलत नहीं दिखाई दे ऐसे रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : वह तो आपकी बात हुई लेकिन हमारे लिए क्या?

दादाश्री : आपको थोड़ा बरतना पड़ता है, बहुत खींचने की ज़रूरत नहीं, साधारण व्यवहार करना होगा।

'वाह-वाह' में पुण्य खर्च हो जाता है

प्रश्नकर्ता : यह आप जो कह रहे हैं, यदि वैसा ही नियम है, तब तो हीरा बा के लिए खर्च किया तो पुण्य आपको मिलेगा?

दादाश्री : मुझे क्या मिलेगा? हमें लेना-देना नहीं है। मुझे तो कुछ लेना-देना ही नहीं न! इससे पुण्य नहीं बंधता, इसमें तो पुण्य खर्च हो जाता है। वाह-वाह हो जाती है।

अथवा कोई खराब कर जाए तो, 'देखो न! इसने बिगाड़ दिया सब' कहेंगे। अर्थात् यहीं का यहीं हिसाब हो जाता है। हाइस्कूल बनवाया था, तो यहीं की यहीं ही वाह-वाह हो गई। वहाँ मिले नहीं।

प्रश्नकर्ता : स्कूल तो बच्चों के लिए बनवाया। वे लोग पढ़े-लिखे, सद्विचार उत्पन्न हुए।

दादाश्री : वह अलग बात है। लेकिन आपकी वाह-वाह हुई, तो हो गया, खर्च हो गया।

किसी के निमित्त से किसी को मिलता है?

प्रश्नकर्ता : वाह-वाह तो जिसके लिए खर्च किया उसे मिलेगी, नहीं कि आपको। आप जिसके लिए जो कार्य करते हैं, उसका फल उसे मिलता है। जिसके लिए आप जो पुण्य करते हैं वह उसे मिलता है। आपको नहीं मिलता।

दादाश्री : हम करें और उसे मिले? ऐसा सुना है कभी?

प्रश्नकर्ता : उसके निमित्त से हम करते हैं न?

दादाश्री : उसके निमित्त से हम करें तो? उसके निमित्त से हम खाते हों तो क्या हर्ज? ना, ना, वह सब इसमें अंतर नहीं है। यह तो सारी बनावट करके लोगों को उल्टे रास्ते चढ़ाते हैं, उसके निमित्त से! उसे खाना नहीं हो और हम खाएँ तो क्या गलत है? नियम सहित है संसार पूरा?

वहाँ खिलें आत्मशक्तियाँ

बाकी, साथ में वह आने वाला है? यह साथ आता नहीं। यहीं तुरंत उसकी कीमत मिल जाती है, वाह-वाह तुरंत मिल जाती है। और आत्मा के लिए जो रखा हो, वह साथ आता है।

प्रश्नकर्ता : साथ क्या आने वाला, कहा!

दादाश्री : साथ में तो हम वह देते हैं, वहाँ आत्मा के लिए, उससे आत्मा की शक्ति एकदम खिल जाती है। वह हमारे साथ आया।

प्रश्नकर्ता : और यहाँ तो जो खर्च किया, वह तो वाह-वाह करते हैं वही मिलता है न?

दादाश्री : मिल गया। वाह-वाह मिल गई।

'वाह-वाह' का भोजन

प्रश्नकर्ता : मैं जो दान करता हूँ उसमें मेरा भाव धर्म के लिए, अच्छे काम के लिए होता है। उसमें लोग वाह-वाह करें तो वह सारा उड़ नहीं जाएगा?

दादाश्री : इसमें बड़ी रकम खर्च हुई, वह ज़ाहिर हो जाती है और उसकी वाह-वाह होती है। और ऐसी रकम भी दान में जाती है कि जो कोई जानता नहीं और वाह-वाह करता नहीं। इसलिए उसका लाभ रहेगा! हमें उस माथापच्ची में पड़ने जैसा नहीं है। हमारे मन में ऐसा भाव नहीं है कि लोग 'परोसें'! इतना ही भाव होना चाहिए। जगत् तो महावीर की भी वाह-वाह करता था! लेकिन उसे वे खुद स्वीकारते नहीं थे न! दादा की भी लोग वाह-वाह करते थे! लेकिन उसे वे 'खुद' स्वीकार करते नहीं न! और ये भूखे लोग तो तुरंत स्वीकार लेते हैं। दान का पता चले बिना रहता नहीं न! लोग तो वाह-वाह किए बगैर रहेंगे नहीं, लेकिन खुद उसे स्वीकार नहीं करे तो फिर क्या हर्ज है? स्वीकार करेगा तो रोग पैठेगा न? जो वाह-वाह नहीं स्वीकारता उसे कुछ भी नहीं होता। वाह-वाह खुद स्वीकारता नहीं है। इसलिए उसे कोई नुकसान नहीं होता और बखान करता है, उसे पुण्य बंधता है। सत्कार्य की अनुमोदना का पुण्य बंधता है। अर्थात् ऐसा सब अंदरूनी तौर पर है। ये तो सब कुदरत के नियम हैं।

जो बखान करे उसे वह कल्याणकारी होता है। फिर जो सुने उसके मन में अच्छे भाव के बीज पड़ते हैं कि 'यह भी करने योग्य है। हम तो ऐसा जानते ही नहीं थे!'

प्रश्नकर्ता : हम अच्छा कार्य तन, मन और धन से कर रहे होते हैं, लेकिन कोई हमारा बुरा ही बोले, अपमान करे तो उसका क्या करें?

दादाश्री : जो अपमान कर रहा है, वह भयंकर पाप बाँध रहा है। अब इसमें हमारा कर्म धुल जाता है और अपमान करने वाला तो निमित्त बना।

वाह-वाह की प्रीति

अरे, मैं तो अपना स्वभाव नाप लेता था! मैं अगास जाता था। उस समय कॉन्ट्रैक्ट का व्यवसाय था। अब सौ रुपए की कुछ कमी नहीं थी, उन दिनों पैसों की कीमत बहुत थी। पैसों की कमी नहीं थी, फिर भी मैं अगास जाऊँ, तब वहाँ रुपए लिखवा देता था। तब सौ रुपए का नोट निकालकर कहता कि 'लो, पच्चीस ले लो और पचहत्तर वापस दो'। अब पचहत्तर वापस नहीं लिए होते तो चलता। लेकिन मन था कंजूस और भिखारी, इसलिए पचहत्तर वापस लेता था।

प्रश्नकर्ता : दादा जी, आप तब भी कितना सूक्ष्म देखते थे?

दादाश्री : हाँ, लेकिन मैं क्या कहना चाहता हूँ कि यह स्वभाव, प्रकृति जाती नहीं न! तब फिर मैंने पता लगाया। वैसे लोग मुझे कहते थे कि 'बहुत नोबल हो आप!' मैंने कहा, 'यह कैसे नोबल?' यहाँ पर कंजूसी करते हैं। फिर ढूँढा तो मुझे पता चला कि मेरी वाह-वाह करे, वहाँ लाख रुपए खर्च डालता था, नहीं तो रुपया भी नहीं देता था। वह स्वभाव बिल्कुल कंजूस नहीं था, लेकिन वाह-वाह न करे, वहाँ धर्म हो या चाहे जो हो, लेकिन वहाँ दे नहीं पाता था। और

वाह-वाह किया कि सब कमाई लुटा देता था। उधार करके भी। अब वाह-वाह कितने दिन? तीन दिन। फिर कुछ भी नहीं। तीन दिन तक चिल्लाएँ ज़रा, फिर बंद हो जाता है।

देखो न, मुझे याद आता है कि 'सौ देकर पचहत्तर वापस लेता। मुझे आज भी दिखाई देता है, अब भी। वह ऑफिस दिखाई देती है'। लेकिन मैंने कहा, 'ऐसा ढंग!' ये लोगों के कितने बड़े मन होते हैं! मैं अपने ढंग को समझ गया था। ढंग सारे। यों बड़ा मन भी था। लेकिन वाह-वाह, गुदगुदी करने वाला चाहिए। गुदगुदी की कि चल पड़ा।

प्रश्नकर्ता : दादा जी, वह जीव का स्वभाव है?

दादाश्री : हाँ, वह प्रकृति, सारी प्रकृति है।

और ये पक्के, वे (बनिए) बैठे हैं न, वे पक्के। वे वाह-वाह से ठगे नहीं जाते। वे तो सोचें कि आगे जमा होता है या यहीं का यहीं रहता है? वह वाह-वाह वाला तो यहीं खर्च कर दिया, उसका फल तो ले लिया मैंने, चख लिया मैंने। और ये तो वाह-वाह नहीं खोजते, वहाँ फल खोजते हैं वे। ओवरड्राफ्ट, बड़े पक्के, विचारशील लोग न! हम से ज़्यादा विचारशील। हम क्षत्रिय लोगों का तो एक वार और दो टुकड़े। सारे तीर्थंकर क्षत्रिय ही थे। साधु खुद कहते हैं, 'हम तीर्थंकर नहीं हो सकते। क्योंकि हम साधु हो जाएँ तो अधिक त्याग करके भी एकाध गिनी रहने देते हैं अंदर! किसी दिन अड़चन पड़े तो?' वह उनकी मूल ग्रंथि है और आप तुरंत देते हो। 'प्रोमिस टु पे' यानी सब प्रोमिस ही! दूसरा आता ही नहीं न! समझ नहीं अंदर। 'थिंकर' (विचारक) ही नहीं। लेकिन छुटकारा जल्दी उन्हें मिलता है।

प्रश्नकर्ता : छुटकारा जल्दी मिलता है!

दादाश्री : हाँ, वे लोग मोक्ष में जाते हैं। केवलज्ञान होता है। लेकिन तीर्थंकर तो ये क्षत्रिय ही होते हैं। वे लोग सभी कबूल करते हैं मेरे पास, हम क्षत्रिय कहलाते हैं। हमें ऐसा नहीं आता है। बहुत गहन है यह। और ये तो विचारशील प्रजा! सभी सोच-विचारकर, प्रत्येक चीज़ में विचारकर काम करते हैं। और हमें (क्षत्रियों को) पछतावे का पार नहीं। उन्हें पछतावा कम आता है।

...लेकिन तख़्ती में नष्ट हो गया!

कोई धर्म में लाख रुपए दान देता है और तख़्ती लगवाता है और कोई मनुष्य एक रुपया ही धर्म में दे, लेकिन गुप्त रूप से दे, तो ये गुप्त रूप से दिया उसकी बहुत कीमत है, फिर भले ही उसने एक ही रुपया क्यों न दिया हो। और यह तख़्ती लगवाई वह तो 'बेलेन्स शीट' पूरी हो गई। सौ का नोट आपने मुझे दिया और मैंने आपको छुट्टा दिया। उसमें मुझे लेने का नहीं रहा और आपको देने का नहीं रहा! आपने धर्म में दान देकर खुद की तख़्ती लगवाई, इसलिए फिर लेना-देना कुछ रहा नहीं न! क्योंकि जो धर्म में दान दिया उसका बदला उसमें तख़्ती लगवाकर ले लिया। और जिसने एक ही रुपया प्राइवेट में दिया होगा, उसका लेन-देन हुआ नहीं, इसलिए उसका बेलेन्स बाकी रहा।

हम मंदिरों में और सब जगह घूमे हैं। वहाँ कुछ जगहों पर पूरी दीवारें तख़्तियों और तख़्तियों से भरी होती हैं! उन तख़्तियों का वैल्युएशन (कीमत) कितना? अर्थात् कीर्ति हेतु के लिए! और जहाँ कीर्ति हेतु ढेरों हो, वहाँ मनुष्य देखता भी नहीं है, कि इसमें क्या पढ़ना? सारे मंदिर में एक ही तख़्ती हो तो पढ़ने के लिए फुरसत होगी, लेकिन यह तो ढेरों, सारी की सारी दीवारें तख़्ती वाली करी हों, तो क्या हो? फिर भी लोग कहते हैं कि मेरी तख़्ती लगवाना! लोगों को तख़्तियाँ ही पसंद हैं न!

लक्ष्मी दी और तख़्ती ली

प्रश्नकर्ता : कितने ही लोग समझे बिना ही देते हैं तो अर्थ ही नहीं उसका?

दादाश्री : नहीं, समझे बिना नहीं देते। वे तो बहुत पक्के, वे तो खुद के हित का ही करते हैं।

प्रश्नकर्ता : धर्म का समझे बिना, नाम के लिए देते हैं। तख़्ती लगवाने के लिए देते हैं।

दादाश्री : वह नाम तो, अभी यह नाम का हो गया! पहले तो नाम का नहीं था। यह तो अभी बेचने लगे हैं नाम भी, इस कलियुग के कारण। बाकी पहले नाम-वाम था ही नहीं। वे देते ही रहते थे निरंतर। इसलिए भगवान उन्हें क्या कहते थे? श्रेष्ठी कहते थे और अभी वे सेठ कहलाते हैं।

शुभ भाव करे जाओ

प्रश्नकर्ता : एक तरफ अंदर भाव होता है कि मुझे दान में सबकुछ दे देना है, लेकिन रूपक में वह भी नहीं होता है।

दादाश्री : वह दिया जाता नहीं न! देना कोई आसान है? दान करना तो कठिन है! फिर भी भाव करना चाहिए। धन अच्छे रास्ते देना, वह हमारी सत्ता की बात नहीं है। भाव कर सकते हैं, लेकिन दे नहीं सकते और भाव का फल अगले जन्म में मिलता है। दान तो ये लट्टू (मनुष्य) किस प्रकार दें? और अगर देते हैं, वह 'व्यवस्थित' दिलवाता है, इसलिए देते हैं। 'व्यवस्थित' करवाता है, इसलिए मनुष्य दान देता है और 'व्यवस्थित' नहीं करवाता, इसलिए मनुष्य दान नहीं देता। 'वीतराग' को दान लेने का या देने का मोह नहीं होता। वे तो 'शुद्ध उपयोगी' होते हैं!

दान देते समय 'मैं दान देता हूँ' ऐसा भाव होता है। उस समय पुण्य के परमाणु खिंचते हैं और बुरा काम करते समय पाप के परमाणु खिंचते हैं। वे फिर फल देते समय शाता फल देते हैं अथवा अशाता फल देते हैं। जब तक अज्ञानी हों, तब तक फल भुगतते हैं, सुख-दु:ख भुगतते हैं। जबकि ज्ञानी उसे भोगते नहीं, 'जाना' करते हैं।

लक्ष्मी का सदुपयोग किस में?

प्रश्नकर्ता : लेकिन मानो कि किसी के पुण्य कर्म से उसके पास लाखों रुपए हो जाएँ, तो उसे गरीबों में बाँट देना या फिर खुद ही उपयोग करना?

दादाश्री : नहीं, वे पैसे इस तरह खर्च करने चाहिए कि घर के लोगों को दु:ख न हो। घर के लोगों से पूछना कि 'भैया, तुम्हें अड़चन नहीं है न?' तब यदि वे कहें, 'नहीं! नहीं है!' तो वह उसकी लिमिट है, पैसे खर्च करने की। इसलिए फिर हमें उसके अनुसार करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : सन्मार्ग पर तो खर्च करना है न?

दादाश्री : फिर, बाकी के सारे सन्मार्ग पर ही खर्च करने चाहिए। जितने घर में खर्च होंगे, वे सारे गटर में ही जाएँगे। और अन्यत्र जो खर्च होंगे, वे आपके खुद के लिए ही सेफसाइड हो गई। हाँ, यहाँ से साथ में नहीं ले जा सकते, लेकिन दूसरे रास्ते सेफसाइड की जा सकती है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वैसे तो वह साथ में ही ले गए, ऐसा कहा जाएगा न?

दादाश्री : हाँ, साथ में ले जाने जैसा ही, अपनी सेफसाइड वाला। यानी किसी भी राह दूसरों को कुछ भी सुख मिले, उसके लिए खर्च करने चाहिए। वह सब आपकी सेफसाइड है।

प्रश्नकर्ता : लक्ष्मी का सदुपयोग किसे कहते हैं?

दादाश्री : लोगों के उपयोग के लिए या भगवान के लिए खर्चो, वह सदुपयोग कहलाता है।

हमारी भी भावना सदा रही

मेरे पास लक्ष्मी होती तो मैं लक्ष्मी भी देता, लेकिन ऐसी कुछ लक्ष्मी मेरे पास अभी आई नहीं और आए तो अभी भी देने के लिए तैयार हूँ। क्या मुझे सब साथ ले जाना है? लेकिन कुछ दो सभी को! फिर भी जगत् को लक्ष्मी देने के बजाय, किस प्रकार इस संसार में सभी सुखी हों, जीवन कैसे जीया जाए, ऐसा मार्ग दिखलाओ। लक्ष्मी तो दस हज़ार दें न तो दूसरे दिन वह नौकरी बंद कर देगा, इसलिए नहीं देते लक्ष्मी। इस प्रकार लक्ष्मी देना गुनाह है। मनुष्य को आलसी बना देता है। इसलिए बाप को बेटे के लिए लक्ष्मी अधिक नहीं देनी चाहिए, वर्ना बेटा शराबी हो जाएगा। मनुष्य को चैन मिला कि बस, दूसरे उल्टे रास्ते लग जाता है।

बच्चों को देना चाहिए या दान में?

प्रश्नकर्ता : पुण्य के उदय से ज़रूरत से ज़्यादा लक्ष्मी की प्राप्ति हो तो?

दादाश्री : तो खर्च कर देनी चाहिए। संतानों के लिए अधिक रखनी नहीं चाहिए। उन्हें पढ़ाना-लिखाना, सब कम्प्लीट करके, उन्हें सर्विस पर लगा दिया, तो फिर वे काम पर लग गए। यानी बहुत रखनी नहीं चाहिए। थोड़ा बैंक में, किसी जगह पर रख छोड़ना, दस-बीस हज़ार, तो कभी मुश्किल में पड़ा हो तो उसे दे देना। उसे बताना नहीं कि, भाई मैंने रख छोड़े हैं। हाँ, नहीं तो मुश्किल में नहीं आते हों तो भी खड़ी कर देंगे।

एक व्यक्ति ने मुझसे प्रश्न किया कि 'बच्चों को कुछ नहीं देना

चाहिए?' मैंने कहा, 'संतानों को देना चाहिए। हमारे बाप ने हमें जो दिया हो वह सभी देना चाहिए। बीच का जो माल है, वह अपना। उसे हम चाहे जहाँ धर्म के लिए दान में खर्च कर दें।'

प्रश्नकर्ता : हमारे वकीलों के कानून में भी ऐसा है कि पैतृक संपत्ति है, उसे संतानों को देनी ही पड़ेगी और स्वोपार्जित है, उसका बाप को जो करना हो वो करे।

दादाश्री : हाँ, जो करना हो वो करे। अपने हाथों ही कर लेना चाहिए! अपना मार्ग क्या कहता है कि तेरा खुद का माल हो, वह माल तू अलग करके खर्च कर, तो वह तेरे साथ आएगा। क्योंकि यह ज्ञान लेने के बाद अभी एक-दो अवतार बाकी रहे हैं, इसलिए साथ में चाहिए न? यात्रा में, दूसरे गाँव में जाते हैं तो थोड़े पराठें ले जाते हैं, तो यह नहीं चाहिए सब?

प्रश्नकर्ता : अधिक तो कब कहलाता है? ट्रस्टी की तरह रहें तो?

दादाश्री : ट्रस्टी की तरह रहना उत्तम है। लेकिन ऐसे नहीं रहा जा सकता। सभी से नहीं रहा जा सकता। वह भी संपूर्ण ट्रस्टी की तरह नहीं रह सकते। ट्रस्टी अर्थात् तो ज्ञाता-दृष्टा हुआ। ट्रस्टी की तरह संपूर्ण नहीं रहा जाता। लेकिन भाव ऐसा हो न तो थोड़ा-बहुत रह सकते हैं।

और बच्चों को तो कितना देना होता है? हमारे फादर ने दिया हो उतना, कुछ नहीं दिया हो तो भी हमें कुछ न कुछ देना चाहिए।

बेटे शराबी बनते हैं, बहुत वैभव हो तो?

प्रश्नकर्ता : हाँ बनते हैं। बेटे शराबी न बनें उतना तो देना चाहिए न?

दादाश्री : उतना ही देना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : अधिक वैभव देने से वैसा हो जाता है।

दादाश्री : हाँ, उससे हमेशा ही उसका मोक्ष बिगाड़ेगा। हमेशा हिसाब से देना ही अच्छा है! बच्चों को अधिक देना गुनाह है। यह तो फॉरेन वाले सभी समझते हैं! कितने समझदार हैं! इन्हें तो सात पीढ़ियों तक का लोभ! मेरी सातवीं पीढ़ी के बच्चे के वहाँ ऐसा हो। कितने लोभी हैं ये लोग? बेटे को हमें कमाता-धमाता कर देना चाहिए, वह हमारा फर्ज़ और बेटियों को हमें ब्याह देना चाहिए। बेटियों को कुछ देना चाहिए। आजकल बेटियों को हिस्सा दिलवाते हैं न हिस्सेदार की तरह? ब्याह करने में खर्च होता है न? फिर ऊपर से थोड़ा बहुत दे देना। उसे गहने दिए, वह तो देते ही हैं न! लेकिन खुद का तो खुद को ही खर्च करना चाहिए।

प्रश्नकर्ता : बच्चों को पारिवारिक व्यवसाय सौंपना और कर्ज़ देना चाहिए न?

दादाश्री : आपके पास मिलियन डॉलर हों या आधा मिलियन डॉलर हों, फिर भी बेटा जिस मकान में रहता हो, वह बेटे को देना। उसके बाद एक काम शुरू करवा देना, जो उसे पसंद हो वह। कौन सा काम उसे पसंद है, वह पूछकर जो काम उसे ठीक लगे, वह करवा देना और बैंक से पच्चीस-तीस हज़ार लाकर दे देना, लोन पर। तो भरता रहेगा अपने आप। और थोड़े-बहुत आपके खुद के दे देने चाहिए। उसे चाहिए उसमें से आधी रकम हमें देनी और आधी बैंक से, ताकि लोन भरता रहे। यानी उसे धक्का लगाने वाला चाहिए ताकि शराब न पीए। फिर बेटा कहे कि 'इस वर्ष मुझसे लॉन भरा नहीं जाएगा'। तब कहना कि 'मैं ला देता हूँ तुझे पाँच हज़ार, लेकिन जल्दी लौटा देने हैं'। यानी पाँच हज़ार लाकर देना। फिर हम उन पाँच हज़ार की याद दिलाए, 'वे जल्दी दे देने हैं, ऐसा कहा है', ऐसा याद दिलाने पर यदि

बेटा कहे कि, 'आप अभी किच-किच मत करना'। तो हमें समझ जाना चाहिए कि 'बहुत अच्छा हुआ यह', फिर से लेने ही नहीं आएगा न! वह ऐसा कहे, 'किच-किच कर रहे हो' तो हमें हर्ज नहीं है, लेकिन लेने नहीं आएगा न!

अर्थात् हमें हमारी सेफसाइड रखनी है और फिर गलत भी नहीं दिखाई देंगे, बेटे के सामने। बेटा कहेगा, 'पिता जी तो अच्छे हैं, लेकिन मेरा स्वभाव टेढ़ा है। मैंने उल्टा कहा इसलिए। बाकी पिता जी तो बहुत अच्छे हैं।' मतलब भाग निकलना है, इस संसार में से।

आदर्श विल

बेटी को हिसाब से देना चाहिए। बेटे को देना, लेकिन हिसाब से। बाकी, आधी पूँजी तो अपने पास ही रहने देनी चाहिए। अर्थात् प्राइवेट! ज़ाहिर नहीं की हो वैसी। दूसरा सब ज़ाहिर करना और कहना कि हम दो जनों को जीवित रहने तक चाहिए न?

अर्थात् हमें तरीके से समझदारी के साथ काम करना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन मनुष्य मर जाए, उसके बाद का विल कैसा होना चाहिए?

दादाश्री : ना, मरने के बाद तो जो है न हमारे पास, ढाई लाख रुपए बचे हैं, वे तो अपनी हाज़िरी में ही, मरने तक रहने ही नहीं देने हैं। हो सके तो ओवरड्राफ्ट निकलवा लेना। अस्पताल के, ज्ञानदान के, सभी ओवरड्राफ्ट निकलवा लेना और फिर जो बचे, वह बच्चों को देना। बचाना भी सही थोड़ा। उनका जो लालच है न, उस लालच के लिए पचास हज़ार रखना। फिर बाकी के दो लाख का ओवरड्राफ्ट निकलवा लेना, अगले जन्म में हम क्या करेंगे? पिछले जन्म के ये सभी ओवरड्राफ्ट अभी खर्च कर दोगे, तो फिर इस अवतार में ओवरड्राफ्ट नहीं निकलवाना पड़ेगा? हाँ, किसी को हमने दिए नहीं ये। यह लोगों

के हित के लिए, लोक कल्याण के लिए खर्च किए, वह है तो ओवरड्राफ्ट कहलाता है। बेटों को देकर तो पछताए हैं। ऐसे पछताए थे न वास्तव में! बेटे का हित कैसे करना, यह हमें समझना चाहिए। इसलिए मेरे पास आकर बातचीत कर लेनी चाहिए।

इसलिए मैं कहता हूँ कि धूल में जाए, उसके बजाय किसी अच्छे रास्ते जाए, ऐसा कुछ करो। साथ में काम आएगा और वहाँ तो जाते समय चार नारियल बंधवाएँगे न! और उसमें भी बेटा क्या कहेगा, 'ज़रा सस्ते वाले बिना पानी के देना न!' आपके पास यदि ज़्यादा हों, तो अच्छे रास्ते पैसे खर्च करना, लोगों के सुख के लिए खर्च करना। उतने ही आपके, बाकी गटर में...

यह तो ऐसा सब नहीं बोलना चाहिए, फिर भी कहते हैं हम!

और ऐसे हिसाब चुक जाते हैं

प्रश्नकर्ता : एक मनुष्य को हमने पाँच सौ रुपए दिए और रुपए वह लौटा नहीं सका। और दूसरा, हमने पाँच सौ रुपयों का दान दिया। इन दोनों में क्या अंतर है?

दादाश्री : यह दान दिया वह अलग चीज़ है। उसमें जो दान लेता है, वह कर्ज़दार नहीं होता। आपके दान का बदला आपको दूसरी तरह से मिलता है। दान लेने वाला मनुष्य, वह बदला नहीं देता है। जबकि उसमें तो आप जिसके पास पैसे माँगते हो, उसके द्वारा ही आपको दिलवाना पड़ता है। फिर आख़िर दहेज के रूप में भी वह रुपए देगा। हमारे में नहीं कहते कि लड़का है गरीब परिवार का, लेकिन परिवार खानदानी है, इसलिए पचास हज़ार उसे दहेज में दो! यह काहे का दहेज देते हैं? यह तो जो बकाया है, वही चुकाते हैं। अर्थात् ऐसा हिसाब है सारा। एक तो बेटी देते हैं और रुपए भी देते हैं। इसलिए, ऐसे सारा हिसाब चुक जाता है।

विश्वसनीय कहने वाला

कोई पाँच हज़ार डॉलर आपके हाथ से छीनकर ले जाए तो क्या करोगे?

प्रश्नकर्ता : ऐसे कई छिन गए हैं। सारी जायदाद भी चली गई है।

दादाश्री : तो क्या करते हो? मन में कुछ होता नहीं है?

प्रश्नकर्ता : कुछ नहीं।

दादाश्री : उतना अच्छा है, तब तो समझदार हो। छिन जाने के लिए ही आता है। यहाँ नहीं पैठेगा तो वहाँ पैठ जाएगा। इसलिए अच्छी जगह पैठा देना। वर्ना अन्य जगह तो पैठ ही जाने वाला है। धन का स्वभाव ही ऐसा है, इसलिए अच्छे रास्ते नहीं गया तो उल्टे रास्ते जाएगा। अच्छे रास्ते कम गया और उल्टे रास्ते ज़्यादा गया।

प्रश्नकर्ता : अच्छा रास्ता बताइए। मालूम किस तरह चले कि रास्ता अच्छा है या खराब?

दादाश्री : अच्छा रास्ता तो वैसे... हम एक पैसा लेते नहीं हैं। मैं अपने घर के कपड़े पहनता हूँ। इस देह का मैं मालिक नहीं! छब्बीस वर्ष से इस देह का मैं मालिक नहीं। इस वाणी का मैं मालिक नहीं। अब आपको जब कुछ विश्वास आया, मुझ पर थोड़ा विश्वास बैठा, इसलिए मैं आपको कहता हूँ कि भई, अमुक जगह आप पैसा डालो तो अच्छे रास्ते खर्च होंगे। आपको मुझ पर थोड़ा विश्वास आया इसलिए मैं आपसे कहूँ तो हर्ज है?

प्रश्नकर्ता : ना।

दादाश्री : वही अच्छा रास्ता है। दूसरा कौन सा? कहने वाला

विश्वसनीय होना चाहिए। विश्वसनीय! जिसका कमीशन नहीं हो, ज़रा सा भी! जब उसमें एक पाई भी कमीशन नहीं हो, तब वह विश्वसनीय कहलाएगा! ऐसा दिखाने वाले हमें मिले नहीं हैं। हमें तो जिस-तिस में कमीशन... (देना पड़े, ऐसा दिखाने वाले मिले!)

प्रश्नकर्ता : दादा जी, हमें रास्ता बताते रहीएगा।

दादाश्री : जहाँ किसी भी प्रकार का कमीशन है, वहाँ पैसा गलत रास्ते पर जाता है। अब तक तो इस संघ के चार आने भी खर्च नहीं हुए हैं, किसी कारकून या उसके नाम पर। सभी अपने घर के पैसों से काम कर लेते हैं, ऐसा है यह संघ, पवित्र संघ! इसलिए सच्चा रास्ता यह है। जब डालने हों, तब डालना और वह भी तब, जब आपके पास हों। नहीं हों तो मत डालना। अब यदि ये भाई कहें कि 'मैं फिर से दूँ दादा जी?' तो मैं कहूँ, 'ना, भई! तू तेरा धंधा किए जा'। अब एक बार दिया उसने! यहाँ फिर से देने की ज़रूरत नहीं है। हो तो शक्ति के अनुसार डालो! वज़न दस रतल उठा सकते हो तो आठ रतल उठाओ, अट्ठारह रतल मत उठाओ। दु:खी होने के लिए नहीं करना है। लेकिन सरप्लस धन उल्टे रास्ते न जाए, इसलिए यह रास्ता दिखाते हैं। वर्ना यह चित्त लोभ में ही रहेगा, भटकता रहेगा! इसलिए ज्ञानीपुरुष दिखाते हैं कि इस जगह पर डालना।

धन डालो सीमंधर स्वामी के मंदिर में

अधिक धन हो तो सीमंधर स्वामी के मंदिर में देने जैसा है, दूसरा एक भी स्थान नहीं है। और कम धन हो तो महात्माओं को भोजन कराने के जैसा दूसरा कुछ भी नहीं! और उससे भी कम धन हो तो किसी दु:खी को देना। और वह भी नक़द नहीं, खाना-पीना आदि पहुँचाकर! कम धन में भी दान करना हो तो पुसाएगा या नहीं पुसाएगा?

पहचानो सीमंधर स्वामी को

अपने यहाँ पर आपने सीमंधर स्वामी का नाम तो सुना है न? वे वर्तमान तीर्थंकर हैं, महाविदेह क्षेत्र में! उनकी उपस्थिति हैं आज।

सीमंधर स्वामी की उम्र कितनी? साठ-सत्तर साल की होगी? पौने दो लाख साल की उम्र है! अभी सवा लाख वर्ष जीने वाले हैं! यह उनके साथ तार, संबंध जोड़ देता हूँ। क्योंकि वहाँ जाना है। अभी एक अवतार शेष रहेगा। यहाँ से सीधा मोक्ष होने वाला नहीं है। अभी एक अवतार शेष रहेगा। उनके पास बैठना है, इसलिए संबंध जोड़ देता हूँ।

और ये भगवान सारे वर्ल्ड का कल्याण करेंगे। सारे वर्ल्ड का कल्याण होगा! सारे वर्ल्ड का कल्याण होगा उनके निमित्त से। क्योंकि वे जीवित हैं। गए हुए हों न, वे कुछ कर नहीं सकते। केवल पुण्य बंधता है।

अनन्य भक्ति, वहाँ दिया जाता है

हमें मोक्ष में जाना है, वहाँ मोक्ष में जा पाएँ उतना पुण्य चाहिए। यहाँ पर आप सीमंधर स्वामी का जितना करोगे, वह सब आपके साथ जाएगा। बहुत हो गया। उसमें ऐसा नहीं कि यह कम है। उसमें तो आपने जो (देने के लिए) भी सोचा हो, वह सब करो तो सब हो गया। फिर इससे अधिक करने की ज़रूरत नहीं है। फिर अस्पताल बनवाएँ या और कुछ बनवाएँ, वह सब अलग रास्ते पर जाता है। वह भी पुण्य ही है लेकिन पापानुबंधी पुण्य है। अनुबंध से भी पाप बंधता है जबकि यह पुण्यानुबंधी पुण्य।

ये हैं जीते-जागते देव

लक्ष्मी के सदुपयोग का सब से सच्चा रास्ता कौन सा है अभी?

तो पूछते हैं, 'बाहर दान देना? कॉलेज में पैसे देने?' तो कहते हैं, 'नहीं! अपने इन महात्माओं को चाय-पानी, नाश्ता करवाओ। उन्हें संतोष देना, वह सब से अच्छा रास्ता है। ऐसे महात्मा वर्ल्ड में मिलेंगे नहीं। वहाँ सतयुग ही दिखाई देता है और सभी आएँ हो तो आपका किस प्रकार भला हो, यही सारे दिन भावना।'

पैसे नहीं हों न, तो उसके वहाँ भोजन करो, रहो, वह सब अपना ही है। आमने-सामने पारस्पारिक है। जिसके पास सरप्लस है, वह खर्च करे। और अधिक हों तो मनुष्य मात्र को सुखी करो, वह अच्छा है और उससे भी आगे, जीवमात्र के सुख के लिए खर्च करो।

बाकी स्कूलों में दो, कॉलेजों में दो, उससे नाम होगा, लेकिन सच्चा यह है। ये महात्मा बिल्कुल सच्चे हैं, उसकी गारंटी देता हूँ, भले कैसे भी होंगे। पैसे कम होंगे, फिर भी उनकी नीयत साफ, भावना भी बहुत सुंदर है। प्रकृति तो अलग-अलग होती ही हैं। ये महात्मा तो जीते-जागते देव हैं। आत्मा भीतर प्रकट हो चुका है। एक क्षण भी आत्मा को भूलते नहीं। वहाँ आत्मा प्रकट हुआ है, वहाँ भगवान हैं।

प्रश्नकर्ता : लोगों को भोजन कराएँ वह फलता नहीं?

दादाश्री : वह फलता है न। लेकिन यहीं के यहीं वाह-वाह होती है, उतना ही। उसका फल यहीं का यहीं मिल जाता है। और वह वहाँ मिलता है, वाह-वाह नहीं होती, वह वहाँ मिलता है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् साथ ले जाना, ऐसा न?

दादाश्री : वह साथ ले जाने का। यह आपने दस दिए वे साथ ले जाएँगे और वाह-वाह हुई तो खर्च हो गया।

प्रश्नकर्ता : तो कल से सब को भोजन करवाना बंद कर देना पड़ेगा।

दादाश्री : भोजन करवाना, वह तो आपके लिए अनिवार्य ही है। अनिवार्य से तो किए बिना छुटकारा ही नहीं होता।

यह तो ऐसा है न, इन महात्माओं को भोजन करवाना, और बाहर के लोगों को खिलाना, वह अलग चीज़ है। वह वाह-वाह का कार्य है। यहाँ कोई वाह-वाह कहने नहीं आए हैं। ये महात्मा तो! वर्ल्ड में कोई ऐसे पुरुष नहीं मिलेंगे, या ऐसे ब्राह्मण नहीं मिलेंगे, जो ऐसे हों कि जिन्हें कुछ भी लेने की इच्छा नहीं, कोई भी दृष्टिफेर ही नहीं इन महात्माओं को। ये महात्मा कैसे हैं, जो किसी भी प्रकार का लाभ उठाने में नहीं पड़े हैं, तो ऐसे महात्मा कहाँ से होंगे? यह तो संसार सारा स्वार्थ वाला, ये महात्मा तो करेक्ट (सही) लोग। ऐसे लोग ही नहीं होते न, इस दुनिया में होंगे ही नहीं न!

ऐसी इच्छा ही नहीं होती कि यह डॉक्टर मेरे काम के हैं। ऐसा उनके मन में विचार भी नहीं आता और अन्य लोग तो डॉक्टर आए कि तुरंत सोचते हैं कि किसी दिन काम आएँगे। तो क्या भाई, सिर्फ दवाई खाने के लिए? स्वस्थ है, फिर भी दवाई खाने दौड़ता है?

ये महात्मा क्या हैं, वह मेरे यदि शब्द समझे न, तो वे भगवान जैसे हैं, लेकिन इन महात्माओं को पता नहीं। यह उन्हें चाय-पानी पिलाएँगे, खिलाएँगे, भोजन करवाएँगे, वह सब से बड़ा यज्ञ कहलाता है। प्रथम कोटि का यज्ञ। चूड़ियाँ बेचकर भोजन करवाएँगे न तो भी बहुत अच्छा! चूड़ियाँ शांति नहीं देंगी। महात्माओं के साथ बैठें तो दानत खोरी नहीं होती। इसलिए इन महात्माओं को तो जितना खिलाया जाए उतना खिलाते रहना। चाय पिलाओगे तो भी बहुत हो गया।

ऐसी समझ देनी पड़ती है

एक आदमी मुझसे सलाह पूछ रहा था कि मुझे देना है तो किस प्रकार दूँ? तब मैंने सोचा, 'इसे पैसे देने की समझ नहीं है।' मैंने कहा,

'तेरे पास पैसे हैं?' उसने कहा, 'हाँ' तब मैंने बताया कि 'इस प्रकार देना'। मैं जानूँ कि यह आदमी दिल का बहुत साफ है और भोले दिल का है। उसे सच्ची समझ दो।

बात कुछ ऐसी थी कि हम एक सज्जन के यहाँ गए थे। उसने मुझे छोड़ने के लिए एक आदमी भेजा। सिर्फ छोड़ने के लिए ही। उसने डॉक्टर से कहा कि 'दादा जी को गाड़ी में छोड़ने आप मत जाना, मैं छोड़ आऊँगा।' इस तरह छोड़ने आए और उसमें बातचीत हुई। वह आदमी मुझसे सलाह माँग रहा था कि 'मुझे पैसे देने हैं तो कहाँ पर दूँ, कैसे दूम?' 'बंगला बनवाया है, तो पैसे तो कमाए होंगे?' तब फिर कहा, 'बंगला बनवाया, सिनेमा थियेटर बनवाया। अभी सवा लाख रुपए तो मेरे गाँव में दान में दिए हैं।' तब मैंने कहा कि 'अधिक कमाए हों, तो एकाध आप्तवाणी छपवा देना'। तुरंत ही उसने कहा, 'आपके कहने की देर है, यह तो मुझे मालूम ही नहीं था। मुझे कोई समझाता ही नहीं है।' फिर कहने लगा, 'तुरंत ही, इस महीने में छपवा दूँगा'। फिर जाकर पूछने लगा कि कितना खर्च होगा? तब कहा कि 'बीस हज़ार होंगे'। तुरंत ही कहने लगा कि ' मुझे इतनी पुस्तकें छपवा देनी हैं'। मैंने जल्दी करने का मना किया उस भाई को।

यानी ऐसे भले आदमी हों न जिन्हें दान देने का समझ में नहीं आता हो, और वह भी पूछे तो उसे बताते हैं। हमें पता है कि यह भोला है। उसे समझ में नहीं आता है तो उसे बताते हैं। बाकी समझदार को तो हमें कहने की ज़रूरत ही नहीं न! नहीं तो उसे दु:ख होगा। और दु:ख हो ऐसा हमें नहीं चाहिए। यहाँ पैसों की ज़रूरत ही नहीं है। जब सरप्लस हो तब ही देना, क्योंकि ज्ञानदान जैसा कोई दान ही नहीं है जगत् में!

क्योंकि ये ज्ञान की किताबें कोई पढ़े, तो उसमें कितना सारा

परिवर्तन हो जाए। इसलिए हों तो देना, नहीं हों, तो अपने यहाँ कोई ज़रूरत ही नहीं है वहाँ पर!

सरप्लस का ही दान

प्रश्नकर्ता : सरप्लस किसे कहते हैं?

दादाश्री : सरप्लस तो आज आप दो और कल चिंता हो ऐसा खड़ा हो, वह नहीं कहलाता। अभी छः महीनों तक हमें *उपाधि* होने वाली नहीं है, ऐसा हमें लगे तो काम करना, नहीं तो करना मत।

जबकि यह काम करोगे तो आपको *उपाधि* नहीं देखनी पड़ेगी। ये काम तो अपने आप ही पूर्ण हो जाता है। यह तो भगवान का काम है। जो-जो करता है, उनका यों का यों ही बराबर हो जाता है। लेकिन फिर भी मुझे आपको चेतावनी देनी चाहिए। मुझे किसलिए ऐसा कहना चाहिए कि बिना सोचे-समझे करना? बिना सोचे-समझे कूद पड़ो ऐसा मैं किसलिए करने को कहूँ? मैं तो आपके हित के लिए चेतावनी देता हूँ कि 'पिछले अवतार में आपने दिया था, इसलिए यह मिलता है अभी, और आज दोगे तो फिर से मिलेगा। यह तो आपका ही ओवरड्राफ्ट है। मुझे कुछ लेना-देना ही नहीं। मैं तो आपसे अच्छी जगह डलवाता हूँ, इतना ही है'। पिछले अवतार में दिया था, वह इस अवतार में लेते हैं। क्या सभी में अक्ल नहीं है? तब कहता है, 'अक्ल से नहीं दिए, ऊपर से ही है! आपने बैंक में ओवरड्राफ्ट क्रेडिट करवाया होगा तो आपके हाथ में चेक आएगा'। इसलिए बुद्धि अच्छी हो न तो फिर से जॉइन्ट हो जाता है सब।

लेते हुए भी कितनी बारीक समझ

सिर्फ यहाँ जो पुस्तकें छपती हैं, वही और इतना विश्वास ज़रूर है कि इन पुस्तकों के लिए पैसे आ मिलेंगे, अपने आप ही। उसके लिए निमित्त हैं पीछे। वे सब मिल जाते हैं। उन्हें कुछ कहना या भीख

नहीं माँगनी पड़ती। किसी से माँगे तो उसे दुःख होगा। तब कहेंगे, 'इतने सारे!' 'इतने सारे' कहते ही उसे दुःख होता है। ऐसा हमें पक्का हो गया न? और किसी को दुःख हुआ अर्थात् हमारा धर्म नहीं रहा। इसलिए हम थोड़ा सा भी नहीं माँगते। वह खुद राज़ी-खुशी से कहे तो हम ले सकते हैं। वह खुद ज्ञानदान को समझे तभी ले सकते हैं। इसलिए जिस-जिस ने दिए हैं न, वह खुद ज्ञानदान को समझकर देते हैं। अपने आप ही देते हैं। अभी तक माँगा नहीं है।

यहाँ पर पुस्तक छपवाई हो न तो हमारे पैसे शोभा देंगे और जब पुण्य हों तभी वह मेल बैठेगा। अच्छे पैसे होंगे तभी छपवा पाएँगे। वर्ना छपवाई नहीं जा सकेंगी और वह मेल नहीं बैठता न!

स्पर्धा नहीं होती यहाँ

और स्पर्धा में वह बोलने की ज़रूरत नहीं है। यह स्पर्धा के लाइन वाला नहीं कि यहाँ बोली लगाई कि ये इन्होंने घी इतना बोला और ये इतना बोले! वीतरागों के वहाँ ऐसी स्पर्धा नहीं होती। लेकिन यह तो दूषमकाल में पैठ गया है ऐसा। दूषमकाल के लक्षण सारे। स्पर्धा करना, वह तो भयंकर रोग है। मनुष्य होड़ लगाते हैं। अपने यहाँ कोई ऐसा लक्षण नहीं होता। यहाँ पैसों की याचना नहीं होती।

दादा जी के हृदय की बात

इतने सारे खत आते हैं कि हम किस तरह संभाले यही मुश्किल है। इसलिए अब अन्य लोग छपवा लेंगे। हम तो यह फ्री ऑफ कोस्ट देते हैं, पहली बार, फर्स्ट टाइम। बाद में लोग अपने आप छपवा लेंगे। यह तो, यह जो ज्ञान उत्पन्न हुआ है न वह लुप्त न हो जाए इसलिए छपवा देना है। और कोई न कोई मिल आता है, अपने आप ही हाँ करता है। हमारे यहाँ अनिवार्य, जैसी चीज़ नहीं है। हमारे यहाँ 'लॉ' नहीं है। 'नो लॉ वही लॉ'।

प्रिय को छोड़ दोगे तो समाधि

समाधि कब आएगी? संसार में जिस पर अतिशय स्नेह है, जब उसे खुला छोड़ दिया जाए तब। संसार में अतिशय प्रेम किस पर है? लक्ष्मी जी पर। इसलिए उसे खुला छोड़ दो। तब कहतें हैं कि 'छोड़ देने पर अधिक, और अधिक आने लगी।' तब मैंने कहा कि 'अधिक आए तो अधिक जाने देना'। प्रिय चीज़ को छोड़ दें तो समाधि रहती है।

ऐसा है मोक्षमार्ग

ये भाई लुटा देते थे। फिर मुझे पूछ रहे थे कि क्या मोक्ष का मार्ग है? मैंने कहा, 'यही मोक्ष का मार्ग है, इससे अलग मोक्ष का मार्ग कैसा होता है फिर? अपने पास हो उसे लुटा देना मोक्ष के लिए। उसका नाम मोक्षमार्ग। आख़िर तो आग में झोंकना है न? आख़िर में तो आग देते हैं, किसी को भी दिए बगैर रहना पड़ता है? आपको कैसा लगता है?

जो पास है, उसे लुटा देना और वह भी अच्छे कामों में, मोक्ष के लिए या मोक्षार्थियों, जिज्ञासुओं के लिए अथवा ज्ञानदान के लिए लुटा देना, 'वही है मोक्ष मार्ग'।

जय सच्चिदानंद

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार (सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
54. आप्तवाणी - 14 (भाग-1)
55. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे,
पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : 9328661166/9328661177
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

दिल्ली	9810098564	**बेंगलूर**	9590979099
कोलकता	9830080820	**हैदराबाद**	9885058771
चेन्नई	7200740000	**पूणे**	7218473468
जयपुर	8890357990	**जलंधर**	9814063043
भोपाल	6354602399	**चंडीगढ़**	9780732237
इन्दौर	6354602400	**कानपुर**	9452525981
रायपुर	9329644433	**सांगली**	9423870798
पटना	7352723132	**भुवनेश्वर**	8763073111
अमरावती	9422915064	**वाराणसी**	9795228541

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 722 722 063

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 421127947

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 81129229

www.dadabhagwan.org

दान के प्रवाह

चार प्रकार के दान हैं:- एक आहारदान, दूसरा औषधदान, तीसरा ज्ञानदान और चौथा अभयदान।

भूखे मनुष्य को खिलाया, वह अन्नदान। बीमार मनुष्य को दवाई फ्री ऑफ कॉस्ट लाकर दी, वह औषधदान। लोगों को समझाकर सच्चे रास्ते पर मोड़ें और लोगों का कल्याण हो ऐसी पुस्तकें छपवानी, वह ज्ञानदान। और किसी जीव मात्र को त्रास नहीं हो, ऐसा बर्तन रखना, वह अभयदान।

-दादाश्री

ISBN 978-93-86289-49-0

9 789386 289490

Printed in India

Price ₹15

dadabhagwan.org